कालिदास

कृत

शाकुन्तल

हिन्दी रूपान्तर

मोहन राकेश

राधाकृष्ण प्रकाशन

सस्कृत का जो पहला नाटक मैने पढा, वह था भास का 'प्रातमा नाटक'। तब मै मुश्किल से ग्यारह साढे-ग्यारह साल का था। मुझे याद है जब मुझे नाटक के पहले श्लोक का अर्थ बताया गया, तो मैं आश्चर्य से अपने सामने के एक-एक शब्द को देखता रहा था। श्लोक था

सीताभव पातु सुमन्त्रतुष्ट सुग्रीव राम सहलक्ष्मणश्च।
यो रावणार्यप्रतिमश्च देव्या विभीषणात्मा भरतोऽनुसर्गम्॥

मगलाचरण मे ही नाटक तथा नाटक के सभी पात्रो के नाम दे दिये गये थे, हालाँकि शब्दो का अर्थ कुछ और ही था। इससे आगे पढने पर उन दिनो मुझे बहुत निराशा होती रही, क्योकि नाटक के शेष श्लोको मे इस तरह का कोई चमत्कार नही था। सीधी-सीधी बातें थी 'मम मातुश्च मातुश्च मध्यस्था त्व न शोभसे। गगायमुनयोर्मध्ये कुनदीव प्रवेशिता॥' मुझे लगता जैसे मगलाचरण लिखने के बाद ही भास की कवित्वशक्ति चुक गयी हो, क्योकि उससे आगे वैसा एक भी तो श्लोक उनसे नही लिखा जा सका! एक नाटक के रूप मे उस नाटक को मैने बहुत बाद मे पढा। तब तक अध्ययन की दृष्टि से ही नही, रगमच की दृष्टि से भी भास से मेरा परिचय हो चुका था—'स्वप्नवासवदत्त' के माध्यम से। विभाजन से पहले लाहौर मे हमने पजाब विश्वविद्यालय सस्कृत परिषद् की ओर से सस्कृत के तीन नाटक रगमच पर प्रस्तुत किये थे। 'स्वप्नवासवदत्त' मे अभिनय करने तथा शेष दो नाटको का निर्देशन करने में जो अनुभव प्राप्त हुए, उनका यहाँ उल्लेख अप्रासगिक होगा। हाँ, सस्कृत के तीन-चार नाटको का हिन्दी मे अनुवाद करने की बात सबसे पहले उन्ही दिनो मन मे आयी

थी। उनमे से पहले मैने 'प्रतिमा नाटक' को ही उठाया था, पर उसके मगलाचरण से ही हारकर वह प्रयत्न वही छोड दिया। बचपन मे जिन पक्तियो के लिए भास को सबसे अधिक श्रेय दिया करता था, वही अब ऐसी उलझाने वाली लगी कि अनुवाद करने का सारा उत्साह ठडा पड गया।

यह समस्या भास के साथ ही नही, और नाटककारो के साथ भी थी बल्कि औरो के साथ भास से कही अधिक थी। सस्कृत का समास-प्रधान रूप उस भाषा की अभिव्यजना को बढाने मे जितना सहायक है, शायद उतना ही उसके सहज सम्प्रेषण मे बाधक भी है। उस भाषा की आन्तरिक प्रकृति आज की भाषा से इतनी अलग है कि आज की किसी भी भाषा मे उसका अनुवाद—विशेष रूप से एक नाटक का नाटकीय भाषा मे अनुवाद —कई-कई स्तरो पर एक चुनौती बन जाता है। ऐसे मे अनुवादक या तो मूल से काफी स्वतन्त्रता लेने लगता है, या फिर मूल की सश्लिष्ट अभि-व्यक्तियो को बिलकुल ही बचा जाता है। पर इन दोनो तरह के प्रयत्नो को एक सीमित अर्थ मे ही अनुवाद कहा जा सकता है।

बात लगभग मन से उतर गयी थी, और शायद किसी भी नाटक के अनुवाद का उत्साह फिर मन मे न आता, यदि कुछ वर्ष पहले दिल्ली के रगमच पर 'मिट्टी की गाडी' नाम से 'मृच्छकटिक' का अभिनय न देखा होता। हबीब तनवीर द्वारा प्रस्तुत उस नाटक मे जहाँ प्रयोग और शिल्प की दृष्टि से कई विशेषताएँ थी, वहाँ उसकी सबसे बडी सीमा थी अनुवाद की पाण्डुलिपि जो शायद एक अँग्रेजी अनुवाद के आधार पर तैयार की गयी थी। उन दिनो दो दृष्टियो से नाटक को फिर से पढा—एक तो अनुवाद के लिए, और दूसरे आज की अपेक्षाओ के अनुसार उसका रगमचीय रूपान्तर तैयार करने के लिए। एक विचार लगभग चार साल पहले पूरा हो गया था, पर दूसरा आज भी पूरा होना रहता है।

तभी दो और नाटको का भी इसी तरह अनुवाद तथा रगमचीय रूपान्तर तैयार करने की बात मन मे आयी थी। उनमे से 'शाकुन्तल' का

अनुवाद आज पूरा कर लेने के बाद 'स्वप्नवासवदत्त' का अनुवाद तथा इन तीनो नाटको के रगमचीय रूपान्तर तैयार करने की बात कल के दायित्व के रूप मे मन मे बनी है। कह नही सकता कि यह सब कब तक करना सम्भव होगा, और, होगा भी या नही।

'मृच्छकटिक' और 'शाकुन्तल' के इन अनुवादो मे शूद्रक और कालिदास के साथ कहाँ तक न्याय हुआ है, यह मै नही कह सकता। परन्तु मेरा प्रयत्न अवश्य रहा है कि जहाँ तक बन पडे, मूल के भाव और अर्थ दोनो की अनुवाद मे रक्षा की जाय। साथ यह भी कि अनुवादक की ओर से अतिरिक्त शब्दो का प्रयोग कम-से-कम हो, और किसी भी तरह का अतिरिक्त आशय उसमे न आने पाये। फिर भी कुछ स्थल ऐसे है जहाँ नाटकीय अन्विति के निर्वाह के लिए, या श्लोको के अनुवाद की मुक्तक लय बनाये रखने के लिए, थोडी बहुत स्वतन्त्रता मुझे लेनी पडी है। इसके लिए बहुत अधिक अधिकार मैने अपने को नही दिया, पर मूल का अनुसरण करने के लिए लय और अन्विति की उपेक्षा कर जाने से अनुवाद का उद्देश्य ही शायद पूरा न हो पाता। अनुवाद मे बहुत-सी सीमाएँ अनुवादक की हो सकती है, पर कुछ सीमाएँ ऐसी भी है जो इस तरह के प्रयत्न मे स्वत अन्तर्हित रहती है। फिर मूल-रचना से आज का सदियो का अन्तर—भाषा, शिल्प, भावयोजना तथा परिकल्पना का—अपने मे ही एक सीमा है।

किसी ने यह प्रश्न उठाया था कि राजा लक्ष्मणसिह के अनुवाद के रहते 'शाकुन्तल' का एक और अनुवाद क्यो? इस सम्बन्ध मे इतना ही कहा जा सकता है कि हर दूसरी-तीसरी पीढी के बाद, और नही तो भाषा की दृष्टि से ही, इन रचनाओ के नये-नये अनुवादो की आवश्यकता पडती रहेगी। इस तरह यह अनुवाद भी आज के लिए है—आनेवाले कल को इसका स्थान किसी और अनुवाद को लेना होगा।

नई दिल्ली
९-१०-६५

मोहन राकेश

पात्र

सूत्रधार
नटी
सारथी
दुष्यन्त
वैखानस
वैखानस-शिष्य
अनसूया
शकुन्तला
प्रियवदा
विदूषक (माधव्य)
दौवारिक (रैवतक)
सेनापति (भद्रसेन)
ऋषिकुमार-१ (हारीत)
ऋषिकुमार-२
करभक
कण्व शिष्य
गौतमी
कण्व ऋषि
शार्ङ्गरव
शारद्वत

कचुकी (पार्वतायन)
वैतालिक-१
वैतालिक-२
प्रतीहारी (वेत्रवती)
पुरोहित (सोमराज)
रक्षक-१ (सूचक)
रक्षक-२ (जालुक)
नागरक श्याल (मित्रावसु)
मिश्रकेशी
चेटी-१ (परभृतिका)
चेटी-२ (मधुकरिका)
चेटी-३ (चतुरिका)
मातलि
सर्वदमन
तापसी-१ (सुव्रता)
तापसी-२ (अन्तिका)
मारीच
अदिति
गालव
और तापसियाँ, इत्यादि

मंच

अंक एक

तपोवन के पास की भूमि तथा ऋषि कण्व का आश्रम।

अंक दो

तपोवन के पास की भूमि।

अंक तीन

ऋषि कण्व का आश्रम।

अंक चार

ऋषि कण्व का आश्रम।

अंक पाँच :

हस्तिनापुर का राजभवन तथा राजमार्ग।

अंक छः :

राजभवन के अन्तर्गत प्रमदवन।

अंक सात

आकाशमार्ग तथा हेमकूट पर्वत पर महर्षि मारीच का आश्रम।

अंक एक

नान्दी-स्वर :

जल,
जो स्रष्टा की पहली सृष्टि है,
अग्नि,
जो विधिवत् दी आहुतियाँ ऊपर ले जाती है,
यजमान,
जो आहुतियाँ देता है,
ये—
और समय का सकेत देते चाँद-सूर्य,
शब्दो को नाद देता
विश्व पर छाया खुला आकाश,
बीजो को पालती धरती,
प्राणियो को प्राण देती वायु,—
इन आठ रूपो मे
जो एक उद्भासित है,
हम सब की रक्षा करे,
वह ईश, परमेश्वर।

नान्दी के अनन्तर :

सूत्रधार

बस, अब और नही। (नेपथ्य की ओर देखकर) आर्ये, नेपथ्य का

काम पूरा हो चुका हो, तो इधर आओ।

नटी : (आकर)

यह मै आ गयी, आर्य! कहिये, क्या आदेश है?

सूत्रधार :

आर्ये, इस सभा मे अधिकांशत विक्रमादित्य द्वारा सम्मानित विद्वान् उपस्थित है। विक्रमादित्य स्वय रस और भाव की शिक्षा के महान् आचार्य है। तो आज इस सभा मे हमे कालिदास का लिखा नया नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तल' प्रस्तुत करना चाहिए। तुम हर पात्र से यत्नपूर्वक तैयार होने को कहो।

नटी :

सब लोग अपने-अपने अभिनय मे कुशल है, इसलिए निश्चिन्त रहे, आपकी हँसी नही होगी।

सूत्रधार (मुसकराकर)

पर वस्तुस्थिति यह है कि—

जब तक
विद्वानो का परितोष न हो,
तब तक
अपनी प्रयोग-कुशलता का
कुछ भी अर्थ नही।
जो बहुत शिक्षित है,
उनका भी
विश्वासी हृदय
अपने को लेकर
कभी निश्चिन्त नही होता।

नटी : (विनीत भाव से)

हाँ, यह तो सच है। पर अब आगे क्या करना है, इस सम्बन्धमे आदेश दे।

सूत्रधार :

इससे अच्छा और क्या हो सकता है कि कुछ गाओ जिसे सुनकर सभा के लोग आनन्दित हो उठे।

नटी :

तो बताइए किस ऋतु का गीत गाऊँ ?

सूत्रधार :

क्यो नही इस ग्रीष्म ऋतु का ही गीत गाती, जिसका कि अभी आरम्भ हुआ है और जिसमे आगे उपभोग की अनेक सम्भावनाएँ है ? देखो न—

पानी मे डुबकियाँ लेने मे
सुख मिलता है,
हवाएँ
पाटल के फूलो को छू-छूकर
सुगन्धित हो उठती है,
जहाँ कही छाया हो,
वही नीद लेने को मन करता है,
और साँझ
इन दिनो
अपनी ही एक
रमणीयता लिये रहती है।

नटी :

तो लीजिए।

गाने लगती है

शिरीष के फूल,
जिनकी कोपलो के कोमल मुँह
भौरे
हल्के-हल्के छूते है,

उन्हे,
देखो ये युवतियाँ
किस भावना से
कानो मे सजा रही है।

सूत्रधार :

कितना अच्छा गाया है तुमने। तुम्हारे गीत ने सभा का मन इस तरह बाँध लिया है कि वह चित्रलिखित-सी जान पडने लगी। तो बताओ, अब किस नाटक का अभिनय करके इसका मनोरजन किया जाय ?

नटी :

आप पहले ही आदेश दे चुके है कि आज 'अभिज्ञान शाकुन्तल' नामक नये नाटक का अभिनय करना है।

सूत्रधार :

अरे, हाँ, अच्छा याद दिलाया। मै तो बिलकुल भूल ही गया था। क्योकि—

तुम्हारे गीत की मनोहर लय
उसी तरह
अनायास
मन को खीच ले गयी,
जैसे
यह तेज दौडता हरिण
राजा दुष्यन्त को
अपने पीछे-पीछे
खीचे लिये आता है।

दोनों चले जाते है।

प्रस्तावना

धनुष चढ़ाये और सारथी के साथ रथ में हरिण का पीछा करते राजा दुष्यन्त का प्रवेश।

सारथी (राजा की ओर देखकर)

आयुष्मन्!

एक ओर
काले चितकबरे हरिण को
और दूसरी ओर
आपको
देखकर लगता है
कि
मृग का पीछा करते
साक्षात् शिव को ही
देख रहा हूँ।

दुष्यन्त :

हरिण हमें बहुत दूर खींच लाया, सारथी! देखो न अब भी यह—

लचकीली गरदन
मोड-मोड, बार-बार,
देख पीछे रथ आता
फिर सरपट भागता है।
पीछे का आधा भाग
बाण लगने के डर से
आगे के आधे मे
सिमटा-सा जाता है।
आधे चबे तिनके,
थकान से खुले मुँह से

गिरे-गिरे जाते है
रास्ते मे इधर-उधर।
बडी-बडी कुलाँचे भरता,
धरती पर कम टिकता,
और जैसे नभ मे ही
उडा चला जाता है।

(आश्चर्य के साथ) अरे, मै इतना तेज इसका पीछा कर रहा हूँ, फिर भी यह आँख से ओझल हुआ जा रहा है।

सारथी

यहाँ धरती ऊँची-नीची थी। मेरे लगाम खीचने से रथ की चाल धीमी पड गयी थी। इसीसे यह दूर निकल गया। अब आगे समतल है, वहाँ इसे पकडना कठिन नही होगा।

दुष्यन्त

तो ठीक है, लगाम ढीली छोड दो।

सारथी

जैसी आयुष्मान् की आज्ञा। (लगाम ढीली छोडकर रथ की गति की ओर सकेत करता हुआ) आयुष्मन्, देखो—

रास ढीली छोडते ही
लम्बे शरीर के
ये घोडे,
कान सीधे
और अयालें स्थिर किये,
रास्ते मे तैरते-से
यूँ दौडने लगे
कि
इनके पैरो की धूल भी
इनसे आगे नही निकल पाती।

दुष्यन्त (प्रसन्न होकर)

सच, ये घोडे तो हरिण से भी बढकर है !

दूर के छोटे बिन्दु
एकाएक पास आकर
बडे हो जाते है,
अलग खडे पेड-पौधे
बाँहे मिला लेते है,
टेढी-मेढी रेखाएँ
सीधी हुई जाती है।
रथ के इस वेग से
क्षण-क्षण मे लगता है कि—
कुछ भी बहुत दूर नही,
कुछ भी बहुत पास नही।

सारथी ·

देखिए, अब हरिण इतना पास है कि इसे मारा जा सकता है।

नेपथ्य से :

सुनो राजा, सुनो ! यह हरिण हमारे आश्रम का है। इसे तुम नही मार सकते इसे तुम नही मार सकते।

एक शिष्य के साथ वैखानस का प्रवेश।

वैखानस : (हाथ ऊँचा करके)

राजा, यह हरिण हमारे आश्रम का है। इसे तुम नही मार सकते।

यह आग जैसा बाण
इसके
रूई जैसे कोमल शरीर पर
तुम नही छोड सकते।
कहाँ

वज्र की तरह टूटते
तीखे फलके के
तुम्हारे बाण,
और कहाँ
काँपती-सी जान लिये
नन्हे-नन्हे हरिण !

तुरन्त
पीछे हटा लो
यह खींचा हुआ धनुष !
तुम्हारे हाथ का शस्त्र
पीडित की रक्षा के लिए है,
निरपराध की हत्या के लिए नही !

दुष्यन्त : (प्रणाम करके)
यह हटा लिया धनुष ।

वैसा करता है ।

वैखानस : (प्रसन्न होकर)
पुरुवश के आलोक को ऐसा ही शोभा देता है ।
पुरुवश मे जन्म लेकर
यही व्यवहार तुम्हारे अनुरूप है ।
कामना है कि
इन्ही गुणो से युक्त
चक्रवर्त्ती पुत्र
तुम्हे प्राप्त हो ।

शिष्य : (हाथ उठाकर)
सर्वथा चक्रवर्त्ती पुत्र तुम्हे प्राप्त हो ।

दुष्यन्त (प्रणाम करके)

ब्राह्मणो की वाणी मेरे हृदय मे धारण रहेगी ।

वैखानस

राजा, हम लोग समिधा लाने जा रहे है। सामने मालिनी के तट पर हमारे गुरु कुलपति कण्व का आश्रम है, शकुन्तला जिसकी अधिष्ठात्री देवी की तरह है। किसी अन्य कार्य मै बाधा न पडती हो, तो वहाँ चलकर अतिथि-सत्कार स्वीकार करो ।

देखकर
कि बिना किसी बाधा के
तापस लोग
यहाँ
अपनी धर्म-क्रियाएँ पूरी करते हे,
तुम्हे विश्वास हो जाएगा
कि तुम्हारी उँगली पर बना
धनुष की डोरी का निशान
किस तरह
इस भूमि की
रक्षा करता है।

दुष्यन्त

कुलपति स्वय यही है ?

वैखानस

नही। अपनी बेटी शकुन्तला को अतिथि-सत्कार का आदेश देकर अभी-अभी सोमतीर्थ गये है—उसके प्रतिकूल ग्रहो की शान्ति का उपाय करने ।

दुष्यन्त

तो हम उनकी बेटी से ही मिल लेगे । महर्षि के लौटने पर वही उनसे हमारा भक्ति-निवेदन कर देगी ।

वैखानस

तो हम लोग अब चल रहे है।

वैखानस और शिष्य चले जाते है।

दुष्यन्त

घोडो को आगे बढाओ, सारथी! पुनीत आश्रम के दर्शन से अपनी आत्मा को पवित्र करेगे।

सारथी

जैसी आयुष्मान् की आज्ञा।

फिर से रथ की गति का निरूपण करता है।

दुष्यन्त (चारो ओर देखकर)

कोई न बताये, तो भी पता चल सकता है कि यह आश्रम के पास की ही भूमि है।

सारथी

कैसे ?

दुष्यन्त

देख नही रहे हो कि—

कही
पेडो के खोखल से झाॅकते
नन्हे तोतो के मुॅह से गिरे
तिनके
पेडो के नीचे पडे है,
कही
हिगोट के फल पीसने से
चिकने
पत्थर नजर आते है,
हरिण

अपरिचित स्वरो से
घबराते नही,
विश्वास से
अपनी चाल चले जाते है,
और
जलाशय से आते मार्गो पर
वल्कलो से टपकते
पानी की
लकीरे बनी है।

और

हवा से कॉपते
नहर के पानी से
पेडो की जडे
धुली-सी हो रही है,
यज्ञ के धुएँ से
कोपलो की चमक
कुछ और ही रग लिये है,
और पास ही ये
हरिणो के बच्चे,
कटी घास की वनभूमि मे,
नि शक होकर
धीरे-धीरे चल रहे है।

सारथी :

आप ठीक कह रहे है।

दुष्यन्त · (कुछ और आगे बढ आने पर)

रथ को रोक लो जिससे आश्रमवासियो के कार्य मे किसी तरह की बाधा न पडे। मै यही पर उतर जाता हूँ।

सारथी

यह खीच ली लगाम । अब आप उतर सकते है।

दुष्यन्त (उतरकर और अपनी ओर देखकर)

आश्रम के अन्दर साधारण वेश मे ही जाना उचित होगा । यह धनुष और आभूषण तुम्हें यहीं अपने पास रख लो।

धनुष-आभूषण सारथी को दे देता है।
सारथी लेकर रख लेता है।

आश्रमवासियो से मिलकर मेरे लौटने तक तुम घोडो को अपनी पीठ गीली कर लेने दो।

सारथी

जैसी आयुष्मान् की आज्ञा ।

चला जाता है।

दुष्यन्त (घूमकर और देखकर)

यह रहा आश्रम । अब मै अन्दर प्रवेश करता हूँ। (आश्रम मे आकर, और अपनी बॉह फडकते देखकर) अरे !

शान्त आश्रम मे आकर
दायी बॉह फडक रही है—
यहॉ इसका क्या फल मिलेगा ?
या फिर,
जो होनी हो,
उसके द्वार
कही से भी खुल सकते है।

नेपथ्य से

आओ प्रिय सखियो, इधर आओ।

दुष्यन्त (सुनकर)

दायी ओर वाटिका से बात करने का-सा शब्द सुनायी दे रहा है। तो इसी ओर चलूँ। (घूमकर और देखकर) अरे, ये तपस्वी-

कन्याएँ अपने आकार के अनुरूप घडे लिये, उनसे नन्हे पौधो को सीचती, इधर ही आ रही है। (अच्छी तरह देखकर) सच, कितनी सुन्दर लगती है ये।

राजभवन के लिए दुर्लभ
यह रूप
तपोवन मे रहनेवाली
इन बालाओ का है,
तो कहना होगा
कि
वन की लताओने,
अपनी सुन्दरता से,
उद्यान की लताओ को
फीका कर दिया है।

तो यहाँ छाया मे रुककर इनकी प्रतीक्षा करता हूँ।

उधर देखता रुका रहता है। यथा-निर्दिष्ट रूप से दो सखियो के साथ शकुन्तला का प्रवेश।

एक सखी

शकुन्तला, मुझे लगता है कि तात कण्व को आश्रम के वृक्ष तुझसे कही अधिक प्रिय है। तभी तो न मल्लिका के नये फूलो-सी कोमल लडकी को इनके थाले भरने मे लगा रखा है।

शकुन्तला

यह केवल तात का आदेश ही नही है, अनसूया। मुझे स्वय इन वृक्षो से बहुत स्नेह है।

दूसरी सखी.

शकुन्तला, ग्रीष्म मे फूल देने वाले आश्रम के वृक्षो को तो हम सीच चुकी। चल, अब उन्हे भी सीच दे जिन पर फूल आने का समय

बीत चुका है। इस निष्काम कर्म से बहुत पुण्य होगा।

शकुन्तला

तू ठीक कहती है, प्रियवदा !

फिर से वृक्ष सींचने का अभिनय करती है।

दुष्यन्त (सुनकर, स्वगत)

तो यही है कण्व की बेटी शकुन्तला ? इसे इस तरह आश्रम के कार्य मे लगाकर महर्षि ने विवेक का परिचय नही दिया।

नि सन्देह,
यदि ऋषि चाहते है
कि
यह निसर्ग से सुन्दर शरीर
तापस धर्म की
साधना करे,
तो उनका यह प्रयत्न
नीले कमल की पखुडी से
शम्बा की डाल
काटने का-सा है।

तो पेड की ओट मे रहकर इस नि शक भाव से काम करते देखता हूँ।

वैसा ही करता है।

शकुन्तला :

देख अनसूया, प्रियवदा ने मेरा वल्कल कितना कस दिया है ! मुझे कष्ट हो रहा है, इसे थोडा ढीला कर दे।

प्रियंवदा (हँसकर)

मुझे क्यो कोसती है ? अपने उभरते यौवन को कोस, जिसने तेरे स्तनो मे इतना उभार ला दिया है !

दुष्यन्त

ठीक कहा है इसने।

यह अभिनव शरीर;
महीन गाँठो से
कन्धे पर कसे,
और स्तनो के विस्तार को
अपने मे समेटे,
इस वल्कल मे
अपनी पूरी शोभा
उसी तरह
नही दिखा पा रहा
जैसे
पीले पत्तो के झुरमुट मे
एक नया फूल।

वल्कल इसके अनुरूप परिधान नही, फिर भी इससे इसका शरीर रूखा जान पडता हो, ऐसा नही। क्योकि—

सेवार से घिरा होने पर भी
कमल
सुन्दर ही रहता है,
कालिमा के रहते भी
चाँद
चाँदनी छिटकाता है।
वल्कल के परिधान मे भी
यह बाला
आकर्षक जान पडती है,
क्या है
जो एक रमणीय आकृति को

और रमणीय नही बना देता ?

और—

मृगनयनी के शरीर पर

रूखा वल्कल भी

सुन्दर जान पडता है,

मन मे सुरुचि को

इससे

तनिक भी

आघात नही पहुँचता।

यह एक

खिली कमलिनी है,

और

वल्कल

इसका अपना ही

कुछ ऊपर तक उठा

वृन्त-जाल!

शकुन्तला · (सामने देखकर)

अनसूया, प्रियवदा, हवा से हिलती उँगलियों से यह आम का वृक्ष मुझसे कुछ कहता-सा जान पडता है। चलकर इसे भी पानी दे दूँ जिससे यह भी लहलहा उठे।

प्रियवदा :

देख, क्षण-भर यहीं इसके पास रुकी रहना।

शकुन्तला :

क्यो ?

प्रियंवदा :

तेरे पास होने से लगता है आम के वृक्ष को एक नयी लता का साथ मिल गया है।

शकुन्तला :

ऐसी बाते करती है, इसीलिए तो तेरा नाम प्रियवदा है।

दुष्यन्त

प्रियवदा का कहना कितना सच है ! क्योकि—

नयी कोपल-सा
लाल अधर,
कोमल टहनियो-सी
दुबली बाँहे,
और
एक लुभावने फूल-सा है
इसके अगो मे खिला
इसका यौवन।

अनसूया :

इस नवमालिका को तू भूल गयी, शकुन्तला, जिसने आम के वृक्ष से स्वयवर रचाया है, और जिसे तूने ही वनतोषिणी, यह नाम दे रखा है ?

शकुन्तला :

इसे भूलूँगी, तो अपने को भी भूल न जाऊँगी ? सच, इन दोनो की रति के लिए कितना सुन्दर समय है यह ! नवमालिका का यौवन फूलो से लद गया है, और आम पर फलो का इतना भार है कि वह उपभोग के लिए झुका जा रहा है।

प्रियंवदा : (मुसकराकर)

अनसूया, तू जानती है शकुन्तला वनतोपिणी की ओर इतना क्यो देखती है ?

अनसूया :

बता, क्यो देखती है ?

प्रियंवदा :

इसलिए कि जैसे वनतोषिणी को अपने अनुरूप वृक्ष मिला है, वैसे ही इसे भी अपने अनुरूप पति मिले।

शकुन्तला :

यह तू अपने मन की बात कह रही होगी।

अनसूया :

शकुन्तला, इस माधवी लता को तू क्यो भूल रही है जिसे तात कण्व ने तेरी ही तरह अपने हाथो से पाला है ?

शकुन्तला :

इसे भूलूँगी, तो अपने को भी न भूल जाऊँगी ? (लता के पास जाकर और उसे देखकर, प्रसन्न भाव से) ओह ! कितने आश्चर्य की बात है ! सुन प्रियवदा, इधर आ ! तुझे एक अच्छा-सा समाचार दूँ।

प्रियंवदा :

अच्छा-सा समाचार ?...ऐसा क्या समाचार है ?

शकुन्तला :

इस माधवी-लता को देख .देख, कैसे यह असमय ही ऊपर से नीचे तक खिल उठी है !

अनसूया-प्रियंवदा :

सच कह रही है ?

शकुन्तला :

सच नही तो क्या ? तुम दोनो आकर देख लो न !

प्रियंवदा : (देखकर हर्षपूर्वक)

तो इसके बदले मे सुन ..तेरे लिए भी एक अच्छा-सा समाचार है।

शकुन्तला :

मेरे लिए अच्छा-सा समाचार ?. बता, क्या समाचार है ?

प्रियंवदा :

बस समझ ले कि तेरा विवाह अब होने ही वाला है ।

शकुन्तला :

यह तेरे अपने मन की चाह होगी जा, मै तेरी बात नही सुनती ।

प्रियंवदा :

मै यह हँसी मे नही कह रही । यह शकुन तेरे लिए शुभ है. ऐसा मैने तात कण्व के मुँह से सुना था ।

अनसूया :

तभी तो न यह इतने प्यार से माधवी-लता को सीचा करती है ।

शकुन्तला

क्यो न इसे प्यार से सीचूँ मै ? मेरी बहन है यह!

दुष्यन्त :

सम्भव है कुलपति कण्व की यह असवर्ण सन्तान हो। नही, इस सम्बन्ध मे सन्देह नही होना चाहिए ।

नि सन्देह
क्षत्रिय से
इसका विवाह
सम्भव है,
तभी
मेरे आर्य मन मे
इसके लिए
अभिलाषा जाग रही है ।
जहाँ
सन्देह का विषय हो,
वहाँ
सत्पुरुष का अन्त करण ही
सबसे बडा प्रमाण है ।

फिर भी वास्तविकता का पता अभी चल ही जाएगा।

शकुन्तला (घबरायी-सी)

हाय, देखो, नवमालिका को पानी देने से अचकचाया यह भौरा उससे हटकर मेरे मुँह के आस-पास मँडराने लगा।

भौरे को हटाने का अभिनय करती है।

दुष्यन्त (अभिलाषा के साथ देखकर)

इसका भौरे को हटाना भी कितना सुन्दर लग रहा है!

जिधर-जिधर मे
भौरा
उडकर आता है,
उधर-उधर को
इसकी तिरछी आँखे
घूम जाती है।
इन आँखो मे
कामना नही,
केवल भय है—
फिर भी
इसकी नाचती भौहो को देखकर
लगता है
कि यह केवल
दृष्टि-विलास का ही
अभ्यास कर रही है।

और (जैसे ईर्ष्या के साथ)

इसकी
चचल और काँपती
आँखो को छूकर,
भेद की बात

कहने की तरह
कानो के पास
हौले से गुन्गुनाकर,
और
लगातार
इसके हाथ पटकने पर भी
चुपके से
इसका अधरपान करके,
और इस तरह
रति का सर्वस्व पाकर,
मधुकर,
तुम तो कृतकृत्य हुए—
मारे गये हम
जो अब तक
वास्तविकता ही खोज रहे हे ।

और—
कॉपती-सी चचल दृष्टि
और
भौहो की कुटिल भगिमाएँ ।
बल खाये सुन्दर कटि
तिरछी होकर बार-बार हिलती हुई ।
कोमल पत्तियो जैसे हाथ,
ऊपर-नीचे को थिरकते हुए ।
यह सब
और खुले होठों से निकलता
हल्का सीत्कार—
जान पडता है कि

यह सु-स्तनी
भौरे के डर से व्याकुल
तापस कन्या नही,
बिना वाद्यो के नाचती
कुशल नर्त्तकी है !

शकुन्तला :

अनसूया, प्रियवदा, बचाओ न मुझे इस दुष्ट भौरे से। यह तो मेरा पीछा ही नही छोडता।

अनसुया-प्रियवदा (मुसकराकर)

हम कौन है तुझे बचाने वाली ? पुकारना है तो राजा दुष्यन्त को पुकार जो इस तपोवन के रक्षक है।

दुष्यन्त : (स्वगत)

यह अवसर है अपने को सामने करने का। (प्रकट) देखो, डरो नही, डरो नही ..(बात बीच मे ही रोककर, स्वगत) पर इससे तो इन्हे पता चल जाएगा कि मै ही राजा दुष्यन्त हू. नही, मुझे एक सामान्य अतिथि की तरह ही आचरण करना चाहिए।

शकुन्तला :

यह दुष्ट तो हटने मे ही नही आता। तो मै ही दूसरी ओर चली जाती हूँ। हाय ! यह तो इधर भी पीछे-पीछे चला आ रहा है ! तुम लोग बचाओ न मुझे।

दुष्यन्त : (जल्दी से आगे आकर)

दुष्टो के विनाशक
पौरव के शासन मे
कौन है
जो
भोली तपस्वी कन्याओ को
अनाचार से

पीडित कर रहा है ?

तीनो दुष्यन्त को देखकर कुछ घबरा जाती है।

अनसूया-प्रियंवदा :

आर्य, कोई भी यहाँ अनाचार नहीं कर रहा। केवल एक भौरा है-जिसके पास आकर मँडराने मे हमारी सखी डर गयी है।

दुष्यन्त (शकुन्तला के पास आकर)

कहो, तुम्हारी तपस्या तो उत्कर्ष पर है

शकुन्तला लजाकर सिर झुका लेती है।

अनसूया :

हाँ, एक विशेप अतिथि के आने से अवश्य उत्कर्प पर है।

प्रियवदा :

हम आर्य का स्वागत करती है। शकुन्तला, जा, पर्णशाला से अर्घ्यपात्र मे फल रखकर ले आ। पैर धोने का पानी यही से हो जाएगा।

दुष्यन्त :

नही-नही, आप लोगो की मधुर वाणी से ही हमारा आतिथ्य हो गया।

अनसूया :

आर्य, सप्तपर्णी वेदी मे बैठकर थकान दूर कर ले। यहाँ ठण्डी छाँह भी है।

दुष्यन्त :

आप लोग भी तो अपने पुण्यकार्य से थक गयी होगी। कुछ देर आप भी बैठे।

प्रियवदा (अलग से)

आ शकुन्तला, कुछ देर बठ जाएँ। अतिथि का आदर करना हमारा कर्तव्य है।

शकुन्तला : (स्वगत)

क्या है यह क्यो इस व्यक्ति को देखकर मन मे यह ऐसा भाव उठ रहा है जो कि तपोवन की मर्यादा के अनुकूल नही ?

दुष्यन्त : (उन सबको देखकर)

यह एक-सी उम्र और एक-से रूप की मित्रता कितनी अच्छी लग रही है !

प्रियवदा : (अलग से)

यह कौन व्यक्ति हो सकता है, अनसूया ? आकृति मे इतनी गम्भीरता है कि उसकी थाह नही और बात करने के ढग मे मिठास भी है, प्रभाव भी और उदारता भी।

अनसूया :

यही उत्सुकता मेरे मन मे भी है। तो इसी से पूछती हूँ। (प्रकट) आर्य की मधुर वाणी से विश्वास पाकर पूछ रही हूँ। कौन-सा राजर्षि वश है जिसकी आप से शोभा है ? कौन-सा देश है जिसे आप विरह से उत्सुक छोड आये है ? कौन-सा कारण है जिसने आपने अपने कोमल शरीर को यहाँ तपोवन मे आने का कष्ट दिया है ?

शकुन्तला : (स्वगत)

व्याकुल मत हो, हृदय ! जो तू सोच रहा था, वह सब अनसूया ने पूछ लिया है।

दुष्यन्त . (स्वगत)

अब इन्हे अपना परिचय कैसे दूँ ? या कैसे इनसे अपना परिचय छिपाऊँ ? हाँ, इस तरह ठीक है। (प्रकट) देखिए, मै मै एक वेदविद् ब्राह्मण हूँ। राजा पौरव ने मुझे अपने नगर मे धर्माधिकार के कार्य मे नियुक्त कर रखा है। मन मे इस पवित्र आश्रम को देखने की लालसा थी, इसीलिए इस धर्मवन की ओर चला आया हूँ।

अनसूया :

यहाँ रहकर धर्माचरण करने वालो के लिए यह गौरव का विषय है।

शकुतन्ला श्रृगार-लज्जा का अभिनय करती है

अनसूया-प्रियवदा . (दुष्यन्त और शकुन्तला का भाव देखकर अलग से)

शकुन्तला, आज यदि तात कण्व यहाँ पर होते तो .

शकुन्तला

तो क्या होता ?

अनसूया-प्रियवदा :

तो अपना सब कुछ दे कर भी इस विशेष अतिथि का सत्कार करते ।

शकुन्तला . (दिखावटी क्रोध के साथ)

हटो, तुम लोग कुछ और ही मन मे रखकर बात कर रही हो। मै तुम्हारी बात नही सुनती।

दुष्यन्त :

हम भी आपकी सखी के विषय मे कुछ पूछना चाहते है।

अनसूया-प्रियवदा :

यह आपका अनुग्रह है, इसमे याचना कैसी ?

दुष्यन्त :

महर्षि कण्व तो .जन्म से ब्रह्मचारी है न ? तो फिर यह उनकी बेटी कैसे है ?

अनसूया :

आर्य जानना चाहते है, तो मै बताती हूं। एक बहुत प्रभावशाली राजर्षि है . उनका गोत्र-नाम है कौशिक।

दुष्यन्त :

हाँ, हाँ, महर्षि कौशिक।

अनसूया :

वही वास्तव मे इसके पिता है। उनके छोड देने पर इसका पालन

तात कण्व ने किया, इस नाते वे भी इसके पिता है।

दुष्यन्त :

उनके छोड देने पर यह सुनकर तो और भी उत्सुकता जागती है। हम पूरी बात जानना चाहेगे।

अनसूया :

सुनिए। बहुत पहले की बात है। उन दिनो वे राजर्षि उग्र तपस्या कर रहे थे। इससे आशकित होकर देवताओ ने उनकी तपस्या मे बाधा डालने के लिए मेनका नाम की अप्सरा को उनके पास भेजा।

दुष्यन्त :

हाँ, सब जानते है कि देवता दूसरो की समाधि से कितना डरते है। फिर ?

अनसूया :

वसन्त उतर रहा था। समय रमणीय था। ऐसे मे उसके उन्मादक रूप को देखकर

आधी बात कहकर सकोच से चुप हो जाती है।

दुष्यन्त :

हमे देखते ही लगा था कि यह केवल अप्सरा की ही सन्तान हो सकती है।

अनसूया :

हाँ, यही सच है।

दुष्यन्त

ठीक ही तो है।

मानवी से
ऐसे रूप का
उदय
क्योकर सम्भव है ?

कॉपती विद्युत्
क्या कभी
धरती के गर्भ से भी जन्म ले सकती है ?

शकुन्तला लजाकर सिर नीचा किये रहती है।

(स्वगत) तब तो अपनी मनोकामना पूरी हो सके, ऐसी सम्भावना है ।

प्रियंवदा : (मुसकराकर शकुन्तला की ओर देखते हुए दुष्यन्त-से) लगता है आप अभी कुछ और भी कहना चाहते है।

शकुन्तला तर्जनी के सकेत से उसे धमकाती है।

दुष्यन्त :

आपका अनुमान ठीक है। यह सुन्दर गाथा सुनकर और भी कुछ पूछने को मन होता है।

प्रियंवदा :

आप सकोच न करे। तपस्वियो से कुछ भी जानने-पूछने मे आचार का उल्लघन नही होता।

दुष्यन्त :

हमे पूछना यह है कि—

क्या केवल
कन्यादान होने तक ही
यह
कामनाओ से परे रहकर
तापसधर्म का
पालन करेगी,
या
आजीवन

अपने जैसी आँखो वाली
सुन्दर हरिणियो के साथ
यहाँ विचरण करती रहेगी ?

प्रियंवदा :

इस समय तो धर्माचरण का अकुश इसके सिर पर है, पर तात का निश्चय यही है कि अनुकूल वर मिलने पर इसका कन्यादान कर देगे।

दुष्यन्त : (प्रसन्न होकर स्वगत)

हृदय,
अब तू अपनी
अभिलाषा पर
नियन्त्रण न रख—
सन्देह
दूर हो गया !
यह आग नही
जैसी कि तुझे आशका थी,
बल्कि
एक शीतल रत्न है,
जिसे
तू छू सकता है।

कुन्तला : (जैसे क्रोध से)

देख अनसूया, मै अब यहाँ से जा रही हूँ।

अनसूया :

क्यो ?

शकुन्तला :

मै जाकर आर्या गौतमी को बताती हूँ कि यह प्रियवदा यहाँ क्या-क्या उलटा-सीधा बक रही है।

अनसूया

ना ना, हम आश्रमवासियो के लिए यह उचित नही कि एक विशेष अतिथि आया हो, और हम ठीक से उसका सत्कार किये बिना ही उसके पास से उठकर चल दे।

शकुन्तला बिना उत्तर दिये वहाँ से चल देती है।

दुष्यन्त . (स्वगत)

यह तो सचमुच चल ही दी।

जैसे उसे पकडकर रोकना चाहता है पर अपनी इच्छा पर वश पा लेता है।

सच, एक कामातुर व्यक्ति की चेष्टाएँ भी उसके मनोभावो जैसी ही होने लगती है। अब मै ही—

अपने स्थान से
नही चला,
पर जैसे
चलकर लौट आया।
विनय ने रोक लिया
नही तो
मुनि-कन्या के
पीछे-पीछे
चला जाता।

प्रियवदा : (शकुन्तला के पास जाकर)

सुन चण्डी, तू इस तरह यहाँ से नही जा सकती।

शकुन्तला : (घूमकर भौहे चढाये हुए)

क्यो नही जा सकती ?

प्रियवदा :

तेरे ऊपर मेरा ऋण है, दो पेड सीचने का। उसे उतार ले, तब

जाना।

उसे पकड़कर रोकती है।

दुष्यन्त

वह बेचारी तो पेड सींच-सींचकर पहले ही इतना थक गयी है!

देखो न—

घडा उठाये रहने से
कन्धे झुके-झुके-से
और हथेलियाँ
अभी तक लाल है,
साँस
इतनी तेज है कि
स्तन
काँप-काँप जाते है,
मुँह पर
पसीने की
इतनी-इतनी जालियाँ है कि
कानो के शिरीष फूल
कुम्हला कर झुके जाते है,
और बन्धन खुल जाने से
एक हाथ मे सँभाले केश
ऐसी विवशता है कि
सँभल नही पा रहे है।

इसलिए इसका ऋण मै उतार देता हूँ।

अपनी अँगूठी उतारकर देता है। अनसूया और प्रियवदा अँगूठी पर नाम के अक्षर पढकर एक-दूसरी की ओर देखती है।

दुष्यन्त :

आप कुछ और न सोचे। यह मुझे राजा से भेट मे मिली है।

प्रियवदा

तब तो आपको इसे अपनी उँगली से अलग नही करना चाहिए शकुन्तला का ऋण आपके इन शब्दो से ही उतर गया।

अनसूया

देख शकुन्तला, आर्य ने — राजर्षि ने — तुझे ऋणमुक्त कर दिया है। अब तू यहाँ से जा सकती है।

शकुन्तला : (स्वगत)

अपने पर वश होता तो क्या कभी भी यहाँ से जाती ?

प्रियवदा

तो अब जा क्यो नही रही तू ?

शकुन्तला :

मै तेरे अधीन हूँ क्या ? जब मेरा मन होगा, तब जाऊँगी।

दुष्यन्त : (शकुन्तला की ओर देखकर स्वगत)

जैसा मै इसके लिए सोच रहा हूँ, क्या वैसा ही यह भी अपने मन मे मेरे लिए सोच रही होगी ? लगता है मेरी कामना निराधार नही है। क्योकि—

चाहे
मेरी बात से मिलाकर
बात नही करती
फिर भी
मेरे बात करने पर
कान इसके
इसी ओर रहते हें।
चाहे
अधिक देर

मुँह
इस ओर नही रखती,
फिर भी,
दूसरी किसी ओर भी
बहुत देर तक
यह
नही देख पाती।

नेपथ्य से :

सुनो तपस्वियो, सुनो! तपोवनवासी जीवो की रक्षा के लिए तैयार हो जाओ। शिकार करता हुआ राजा दुष्यन्त यहा पास तक आ पहुँचा है।

गिर रही है
घोडो की टापो से उठी,
धूल—
अस्त होते सूर्य की
किरणो-सी लाल,
और
टिड्डी-दल-सी
घनी—
आश्रम के
उन वृक्षो पर
जिनकी शाखाओ पर हमने
अपने गीले वल्कल
सूखने के लिए
फैला रखे है!

दुष्यन्त :

ओह! कितना बुरा हुआ! लगता है मुझे खोजते हुए मेरे सैनिक

ने तपोवन को घेर लिया है।

पुन नेपथ्य से :

सुनो तपस्वियो, सुनो ! बूढो, बच्चो और स्त्रियो को व्याकुल करता एक हाथी इसी ओर चला आ रहा है !

अनसूया, प्रियंवदा और शकुन्तला सुनकर घबरायी-सी हो रहती है।

दुष्यन्त : (स्वगत)

कितनी बुरी बात है कि अनजाने ही इन तपस्वियो के प्रति हमसे यह अपराध हुआ जा रहा है। मुझे उधर जाकर देखना चाहिए।

अनसूया-प्रियंवदा :

देखिए, इस हाथी के ऊधम ने हमे घबरा दिया है। हमे अनुमति दे कि हम अपनी पर्णशाला मे चली जाएँ।

शकुन्तला : (ठीक से चल पाने मे असमर्थता का अभिनय करती हुई)

हाय, क्या हो गया है—जाँघें काँपने से मेरे लिए तो चलना असम्भव हो रहा है।

दुष्यन्त :

आप लोग सहज भाव से जाएँ। इधर मै प्रयत्न करता हूँ कि आश्रम को किसी प्रकार की क्षति न पहुँचे।

अनसूया-प्रियंवदा :

हम अपराधिनी है कि इस तरह आपका आतिथ्य बीच मे ही छोडकर जा रही है। आप सब जानते है, इसलिए विश्वास है क्षमा कर देंगे। यह इसलिए भी कह रही हूँ कि आतिथ्य पूरा कर सके, इसलिए फिर भी अपने दर्शन का अवसर देंगे।

दुष्यन्त :

ऐसा न कहे। आप लोग से मिल लेने से ही हमारा आतिथ्य पूरा हो चुका।

शकुन्तला :

देख न अनसूया, यह नयी कुशा का एक काँटा मेरे पैर मे गड गया है। इधर वल्कल इस पेड की शाखा मे उलझ गया है। तुम लोग थोडा रुको जिससे मै इसे छुडा लूँ।

बहाने से रुक-रुककर दुष्यन्त की ओर देखती हुई अनसूया और प्रियंवदा के साथ चली जाती है।

दुष्यन्त : (नि श्वास छोडकर)

तो ये चली गयी ! अब मुझे भी चलना चाहिए। शकुन्तला को देखने के क्षण से ही मन मे लौटकर नगर जाने की चाह नही रही। अब चलकर पीछे आते सैनिको से कह दूँ कि वे तपोवन से थोडी दूरी पर ठहरे। मन मे यह शक्ति नही कि शकुन्तला को फिर से देखे बिना यहाँ से जा सकूँ।

शरीर
आगे जा रहा है,
किन्तु
मन की दिशा
पीछे की ओर है !
महीन रेशम की
ध्वजा-सा है यह मन
जिसे मै
वायु से प्रतिकूल
दिशा मे लिये जा रहा हूँ।

प्रस्थान।

।। प्रथम अक ।।

अंक दो

विदूषक का प्रवेश।

विदूषक : (नि श्वास छोडकर)

मार दिया इस शिकारी राजा की मित्रता ने। गरमी की भरी दोपहर, दूर-दूर तक कही पेडो की छाया नही, और ऐसे मे 'यह रहा हरिण, वह रहा सूअर, वह रहा बाघ' करते हुए जगल-भर मे घूमते फिरो और बाद मे पियो सडे पत्तो पर से होकर आता कसैला, बेस्वाद, कडवा, गरम पानी—इन पहाडी नदियो का ! खाने को अधिकतर जलता-जलता माँस, और वह भी जब जिस समय मिल जाय ! हाथी-घोडो के चिंघाडने-हिनहिनाने से रात को भी ठीक से नीद नही आती। और अब सुबह-सुबह ही इस होहल्ले ने मुझे जगा दिया है—दासी के बेटे तीतरमार शिकारी जगल की ओर जा रहे है !

पर इतने से ही मेरा दु ख समाप्त नही होता—ऐसे मे जले गाल पर एक फोडा और निकल आया है। अर्थात् पीछे रहकर यह सब दु ख भोग ही रहा था कि दुर्भाग्य की एक और मार सिर पर आ पडी है ! मृग का पीछा करते राजा ने आश्रम मे जाकर वहाँ शकुन्तला नाम की किसी तपस्वी-कन्या को देख लिया है। उसे देख लेने के बाद अब लौटकर नगर चलने की बात ही नही करता !

यह सब सोचते हुए आँखो मे ही रात बीत गयी। पर किया क्या जाय ? प्रिय मित्र ने अब तक समय के अनुकूल वेश

धारण कर लिया होगा, तो चलकर उसी से मिला जाय। (घूमकर और देखकर) प्रिय मित्र तो इधर ही चले आ रहे है। हाथ मे धनुष, हृदय मे शकुन्तला और गले में वन फूलो की माला! तो हाथ-पैर टेढे करके व्याकुल-सा बनकर यही खडा हो रहता हूँ। सम्भव है इसी तरह कुछ विश्राम मिल सके।

लाठी के सहारे खडा हो रहता है।

निर्दिष्ट वेश में दुष्यन्त का प्रवेश।

दुष्यन्त : (स्वगत)

मिलन
सुलभ नही,
फिर भी
उसका भाव देखकर
मन को आश्वासन है।
कामना की पूर्ति
चाहे न भी हो,
फिर भी
दोनो ओर की आकाक्षा
मन को
सन्तोप तो देती ही है।

(मुसकराकर) कामातुर व्यक्ति कैसे यह सोचकर अपने को ठगता है कि उसके प्रिय की मन स्थिति ठीक वैसी ही होगी जैसी कि उसकी कामना हे।

स्नेह-भरी आँखो से
उसने
दूसरी ओर देखा,
तो वह भी,
भारी नितम्बो के भार से

विलासपूर्वक
धीरे-धीरे चलकर गयी,
तो वह भी,
और
'मत जा'
सखी के कहने पर,
उसने झिडककर
जो उत्तर दिया,
वह भी—
लगता है कि
सब कुछ मेरे लिए ही था!
कैसी है यह कामना
जो
उसके हर कार्य को
अपने—
केवल अपने ही लिए—
मानकर
चलना चाहती है?

विदूषक : (उसी तरह खडा हुआ)

देखिए महाराज, अपना हाथ तो चलता नही, इसलिए केवल शब्दो से ही अभिवादन कर रहा हूँ। जय हो आपकी!

दुष्यन्त : (देखकर और मुसकराकर)

क्यो, क्या हुआ? तुम्हारे अग कैसे जकड गये?

विदूषक :

कैसे जकड गये? स्वय आँख फोडकर पूछते हो कि रो क्यो रहे हो?

दुष्यन्त :

बात समझ मे नही आयी। जरा दूसरी तरह से समझाओ।

विदूषक :

बेत अगर कुबडा होकर झुक जाय, तो उसका कारण क्या होगा ? वह स्वय या नदी का वेग ?

दुष्यन्त :

कारण तो नदी का वेग ही होगा ।

विदूषक :

इसी तरह मेरी इस अवस्था के कारण आप है ।

दुष्यन्त

कैसे ?

विदूषक :

वह ऐसे कि आप तो अपना राजकाज और ओर इतना अच्छा सुरक्षित प्रदेश छोडकर यहाँ वनचर बनकर रहने लगे। अब मै आपसे क्या कहूँ ? प्रतिदिन सिहो और बाघो का पीछा करते-करते मुझ ब्राह्मण का बुरा हाल है। मेरी हड्डियो के जोड इस तरह हिल गये है कि मेरे चलाये अब वे नही चलते । इसलिए इतनी कृपा करे कि कम-से-कम एक दिन तो विश्राम कर ले ।

दुष्यन्त (स्वगत)

इधर इसका यह कहना है, और उधर बार-बार शकुन्तला का ध्यान आने से मेरा भी मन शिकार मे नही लग रहा ।

बाण धनुष पर है,
किन्तु
उसे हरिणो पर छोडने का
उत्साह मन मे नही है ।
इन्ही हरिणो ने तो
साथ रह-रहकर
अपनी आँखो की सुन्दरता
उसे भी

दे दी है।

विदूषक : (दुष्यन्त की ओर देखता हुआ)

अब आप अपने ही मन मे अपने से बात करने लगे। मेरा बात करना जगल मे रोना नही तो क्या है ?

दुष्यन्त : (मुसकराकर)

मेरी चुप्पी का अर्थ यही है कि मित्र की बात टाली नही जा सकती।

विदूषक : (सन्तुष्ट भाव से)

ऐसा है तो तुम्हारी दीर्घ आयु हो।

दुष्यन्त

ठहरो, मेरी शेष बात तो सुन लो।

विदूषक

आज्ञा।

दुष्यन्त

तुम विश्राम कर चुको, तो तुम्हे एक और कार्य मे मेरी सहायता करनी है।

विदूषक :

किस कार्य मे—लड्डू खाने मे ?

दुष्यन्त :

जो भी कार्य मै कहूँगा।

विदूषक :

मै इसी क्षण से वचनबद्ध हूँ।

दुष्यन्त : (पुकारकर)

यहाँ कोई है ?

दौवारिक : (प्रवेश करके)

आज्ञा, स्वामी !

दुष्यन्त :

रेवतक, सेनापति को बुला लाओ !

रैवतक :

जैसी आज्ञा। (जाकर और सेनापति के साथ पुन प्रवेश करके) आइए, आइए, आर्य ! बात करते हुए स्वामी यही बैठे है। आप पास जा सकते है।

सेनापति. (राजा को देखकर)

मृगया के दोष स्पष्ट है, फिर भी स्वामी के लिए वह लाभकारी ही सिद्ध हुई है। क्योकि—

'निरन्तर
धनुष की डोरी खीचने से
कठिन हुआ शरीर
धूप सह लेता है,
और
पसीने की बूँदो से
विचलित नही होता,
वस्त्रो मे छिपे अग
यूँ चाहे दुबले है,
परन्तु
उनमे प्राण-शक्ति
उतनी ही है
जितनी
पर्वतो पर विचरण करने
हाथी मे।

(पास आकर) स्वामी की जय हो। इसका पता चला लिया गया है कि वन मे हरिण कहाँ-कहाँ है, और हिंस्र जीवो के आवास कौन-कौन से है। अब आगे के लिए स्वामी आदेश दे।

दुष्यन्त :

भद्रसेन, माधव्य ने शिकार की निन्दा कर-करके हमारा उत्साह

ठण्डा कर दिया है।

सेनापति : (अलग से)

मित्र माधव्य, तुम अपनी बात पर अडे रहना, दूसरी ओर मै स्वामी के मन की बात करता हूँ। (प्रकट) स्वामी, यह मूर्ख तो ऐसे ही बकता है। अब आप ही देखिए न—

मेद छँट जाने से
उदर क्षीण होता है
और शरीर मे
उत्साह भरा रहता है,
पशुओ मे
भय और क्रोध की
अलग-अलग प्रतिक्रियाऐं
देखने का अवसर मिलता है,
और
चचल लक्ष्य पर
निशाना साधने से
धनुष चलाने का
वास्तविक उत्कर्ष
सामने आता है।
वे झूठे है
जो
मृगया को
एक व्यसन बताते है,
इससे अच्छा
दूसरा मनोरजन
और हो ही क्या सकता है ?

विदूषक : (रोष के साथ)

हट रे, बडा आया उत्साह दिलाने वाला। महाराज वास्तविकता जान गये है। अब जा दासी के बेटे, तू एक वन से दूसरे वन मे घूमता फिर। देखना, सियारो और हरिणो की बाट मे जीभ लप-लपाता कोई बूढा रीछ तुझे खाएगा।

दुष्यन्त

हम इस समय आश्रम के निकट है सेनापति, इसलिए मैं तुम्हारी बात नही मान रहा। अब तो—

भैंसो को
सीगो से मथे
सरोवर के पानी मे
नहाने दो,
हरिणो को
पेडो की छाया मे
जमा होकर
जुगाली करने दो,
बडे-बडे शूकरो को
निश्चिन्त होकर
पोखरो मे नहाते हुए
मोथा उखाडने दो,
और
हमारे धनुष को,
इसकी डोरी ढीली करके
कुछ समय
विश्राम करने दो।

सेनापति :

आप स्वामी है, जैसी आपकी इच्छा।

दुष्यन्त :

इसलिए आगे गये धनुर्धारियो को वापस बुला लो। सैनिको को मना कर दो कि वे तपोवन को घेरे नही, और वहाँ से दूर ही रहे । देखो—

शान्त है ये तपोवन,
किन्तु
इनमे कही निहित है
एक तेज
जो कि
कभी भी सुलग सकता है।
शीतल होते हुए भी
सूर्यकान्त मणि
धूप की गरमी पडने मे
सहसा
दहक उठती है।

सेनापति :

जैसी स्वामी की आज्ञा।

विदूषक :

आया था न उत्साह दिलाने ! चल, अब निकल यहाँ से।

सेनापति चला जाता है।

दुष्यन्त (अनुचरो की ओर देखकर)

आप लोग शिकार का वेश उतार दे। रैवतक, तुम भी अब अपने काम मे लगो।

रैवतक

जैसी महाराज की आज्ञा।

चला जाता है।

विदूषक :

आपने तो सबको भगा दिया—एक मक्खी तक यहाँ नही रही। तो आइए, यहाँ चँदोवे जैसी वृक्ष की छाया मे यह एक शिला है, इस पर बैठ जाइए। मै भी कुछ देर सुख से बैठ लूँ

दुष्यन्त :

तो तुम आगे चलो।

विदूषक :

आइए, इधर से आइए।

घूमकर दोनों बैठ जाते है।

दुष्यन्त :

मित्र माधव्य, तुमने आँखो का कुछ फल नही पाया क्योकि सृष्टि का सबसे अपूर्व सृजन तो तुमने देखा ही नही।

विदूषक :

वह तो आप ही है जो मेरे सामने बैठे है।

दुष्यन्त :

अपने को तो सभी सुन्दर समझते है, परन्तु मै शकुन्तला की बात कर रहा हूँ जो इस आश्रम की शोभा है।

विदूषक : (स्वगत)

होगी, पर मै इसके प्रणय को बढावा नही दूँगा। (प्रकट) सुनो, तपस्वी कन्या होने से जिसे पाया नही जा सकता, उसे देखने से लाभ ?

दुष्यन्त :

छि ! मूर्ख !

मुँह ऊपर को उठाकर
अपलक आँखो से
नयी चन्द्रकला को
विश्व

भला
किस भावना से देखता है ?
फिर दुष्यन्त का मन कभी किसी ऐसी वस्तु पर नही आ सकता
जिसकी कामना वर्जित हो।

विदूषक

बात जरा खोलकर बताओ।

दुष्यन्त :

सुन्दर अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न
वह
एक मुनि की
छोडी हुई सन्तान है
जिसका
किसी और ने भरण किया है।
टहनी से टूटा
नवमालिका का फूल है वह
जो
सयोग से
आक की पत्तियो मे
आ गिरा है।

विदूषक : (हँसकर)

अच्छा, अच्छा, तो जैसे खजूर से अघाकर इमली खाने को मन होता है, उसी तरह अन्त पुर की सुन्दरियो का उपभोग करने के बाद अब आपका इस तापसी के लिए मन हो आया है !

दुष्यन्त :

मित्र, तुमने उसे देखा नही, इसीलिए ऐसा कह रहे हो।

विदूषक :

होगी तो वह सुन्दर ही जिसने आपको भी इस तरह चमत्कृत कर

दिया है।

दुष्यन्त :

अधिक क्या कहूँ, मित्र ?

एक ओर,
विधाता की सामर्थ्य
और दूसरी ओर
उसका रूप—
लगता है कि
सौन्दर्य के सभी उपादानो को
मन मे लाकर
रूप के विशेष सचय मे ही
विधाता
इस कोमलागी की
रचना कर पाया है।
तभी तो न ऐसी
रत्नराशि-सी
एक अलग ही नारी सृष्टि
सम्भव हो सकी है।

विदूषक :

इसका अर्थ यह हुआ कि वह शेष सभी सुन्दरियो से बढकर है।

दुष्यन्त

मेरे मन की प्रतिक्रिया तो यह है कि—

फूल है वह
जिसे किसी ने सूँघा नही,
कोपल है
जिसे किसी नाखून ने कभी छीला नही,
रत्न है

जिसे कभी बींधा नही गया,
और
शहद है
जिसका रस कभी किसी ने चखा नही ।
न जाने किसके
अखण्ड पुण्यो का
फल है उसका रूप,
और न जाने
ससार मे
किसका भाग्य होगा
कि उसका वरण करे ।

विदूषक :

तब तो जल्दी ही कीजिए। ऐसा न हो कि वह हिंगोट के तेल से चिकने सिर वाले किसी तपस्वी के हाथ मे जा पड़े ।

दुष्यन्त :

वह बेचारी पराधीन है और उसके अभिभावक यहाँ है नही ।

विदूषक :

अच्छा यह तो बताओ कि तुम्हारे प्रति उसका अनुराग कैसा है ?

दुष्यन्त :

मित्र, तपस्वी कन्याएँ स्वभाव से ही भोली होती है। फिर भी—
मेरे सामने रहते
उसने मेरी ओर देखा भी
तो केवल
मुँदी-मुँदी आँखो से,
किन्तु
दूसरी किसी बात पर
बिना कारण

अनायास ही हँस दी ।
इस तरह
विनय के आवरण मे रहकर
अपनी कामना को
उसने
न तो प्रकट ही किया
और
न छिपा ही सकी ।

विदूषक (हँसकर)

तो क्या देखते ही आपकी गोद मे आ बैठती ?

दुष्यन्त :

फिर भी सखियो के साथ लौटकर जाते हुए उसने कई-कई बहानो से अपनी भावना अशत प्रकट कर ही दी थी ।

पग दो पग चलकर ही
सहसा
बिना कारण
वह ठिठक गयी
कि
उसके पाँव मे
काँटा गड गया है ।
वल्कल
पेड़ की शाखा मे
उलझा नही था,
फिर भी
उसे छुडाती
वह मेरी ओर मुँह किये
कुछ पल रुकी रही ।

विदूषक :

तो कुछ पाथेय तो उसने तुम्हे दे ही दिया। लगता है कि बहुत रंगीन तपोवन है यह।

दुष्यन्त

देखो, कुछ तपस्वियो ने मुझे यहाँ पहचान लिया है। अब कोई ऐसा बहाना सोचो जिससे फिर से आश्रम मे जाया जा सके।

विदूषक

आप राजा है, आपको क्या बहाना चाहिए ?

दुष्यन्त

राजा होने से क्या होता है ?

विदूषक

जाकर कहे कि तपस्वी लोग आपको अपनी फसल का छठा भाग दे।

दुष्यन्त :

मूर्ख, तपस्वी मुझे एक और ही फ़सल का छठा भाग देते है जिसका मूल्य रत्नो से भी बढकर है। देखो—

चार वर्णो के लोग
राजा को
जो कर देते है,
वह नश्वर है,
केवल तपस्वी ही
तप के छठे भाग के रूप मे
उसे एक
अनश्वर कर दिया करते है।

नेपथ्य से

वाह ! तब तो हमारी मनोकामना पूरी हो गई।

दुष्यन्त (सुनकर)

अरे ! ऐसा सौम्य स्वर तो तपस्वियो का ही हो सकता है।

दौवारिक का प्रवेश।

दौवारिक

स्वामी की जय हो। दो ऋषिकुमार प्रतिहार-भूमि मे उपस्थित है।

दुष्यन्त

उन्हे तुरन्त यहाँ भेज दो।

दौवारिक :

जैसी स्वामी की आज्ञा।

जाकर ऋषिकुमारो के साथ पुन प्रवेश करता है।

आइए, इधर से आइए।

दोनो ऋषिकुमार राजा की ओर देखते है।

एक ऋषिकुमार :

शरीर इतना दीप्तिमान् है, फिर भी इसमे कितनी विश्वसनीयता है ! या फिर इस ऋषितुल्य राजा के यह अनुरूप ही है। क्योकि—

ऋषि है यह भी,
केवल
'राजा' का शब्द
अतिरिक्त है,—
अन्यथा,
सर्वभोग्य आश्रम मे
इसका भी आवास है,
रक्षायोग से
प्रतिदिन
तप का सचय
यह भी करता है,

और
इस सयमी के अधिष्ठान मे भी
चारणो के द्वन्द्वगीत
आकाश की
सीमाओ को छूते है ।

दूसरा ऋषिकुमार

मित्र, तो यही है इन्द्र के सखा दुष्यन्त ?

पहला ऋषिकुमार

हाँ, यही है ।

दूसरा ऋषिकुमार :

आश्चर्य नही
कि अकेले ही ये
नगर-द्वार की अर्गला जैसी
अपनी भुजाओ से
श्यामल समुद्र की सीमा पर्यन्त
सारी धरती का
शासन करते है,
क्योकि
दैत्यो के साथ युद्ध मे
देवताओ को
केवल
दो का ही भरोसा रहता है—
एक
इन्द्र के वज्र का,
और दूसरे
इनके खिचे हुए धनुप का ।

दोनो ऋषिकुमार : (पास आकर)

राजा, आप विजयी हों।

दुष्यन्त . (आसन से उठकर)

मैं अभिवादन करता हूँ।

दोनों ऋषिकुमार :

आपका कल्याण हो।

फल लाकर रखते हैं।

दुष्यन्त : (प्रणाम करके और फल लेकर)

मैं आपके आने का प्रयोजन जानने को उत्सुक हूं।

दोनों ऋषिकुमार :

तपस्वियों को आपके यहाँ आने का पता है। वे आपसे कुछ निवेदन करना चाहते हैं।

दुष्यन्त :

क्या आज्ञा है उनकी ?

दोनों ऋषिकुमार :

कुलपति कण्व के यहाँ न होने से इन दिनों राक्षस हमारे यज्ञ में विघ्न डाल रहे हैं। अतः प्रार्थना है कि सारथी के साथ कुछ दिन यहीं रहकर आश्रम की रक्षा करें।

दुष्यन्त :

मैं इस आदेश से अनुगृहीत हूँ।

विदूषक : (अलग से)

यह तो इन्होंने जैसे गले पर हाथ रखकर तुम्हारी मनोकामना पूरी कर दी।

दुष्यन्त : (मुसकराकर)

रैवतक, मेरी ओर से सारथी को आदेश दो कि धनुष-बाण के साथ रथ लेकर उपस्थित हो।

रैवतक : (आकर)

जैसी देव की आज्ञा। **चला जाता है।**

दोनों ऋषिकुमार : (हर्षपूर्वक)

अपने पूर्वजो की परम्परा मे
तुम्हारा यह व्यवहार
सगत ही है,
क्योकि
जो विपत्ति मे हो
उन्हे अभय दान देने मे
गौरव
सदा से दीक्षित है।

दुष्यन्त (प्रणाम करके)

आप लोग चले। मै बस पीछे-पीछे ही आ रहा हूँ।

दोनो ऋषिकुमार :

तुम्हारी जय हो।

चले जाते है।

दुष्यन्त .

क्यो माधव्य, तुम्हे है उत्सुकता शकुन्तला को देखने की ?

विदूषक :

पहले तो इसमे कोई बाधा नही थी, पर अब राक्षसो की वात सुनकर बाधा आ पडी है।

दुष्यन्त

डरो नही, तुम मेरे पास ही रहोगे।

विदूषक :

अच्छा तो मै तुम्हारे पहिये की रक्षा करूँगा, जब तक कि कोई आकर मुझे वहाँ से भगा नही देता।

दौवारिक : (आकर)

स्वामी की जय हो। स्वामी के विजय-प्रयाण के लिए रथ प्रस्तुत है। पर नगर से राजमाताओ का आदेश लेकर करभक आया है।

दुष्यन्त : (आदरपूर्वक)

माताओ ने उसे आदेश देकर भेजा है ?

दौवारिक :

हाँ, स्वामी !

दुष्यन्त :

तो उसे शीघ्र ले आओ।

दौवारिक :

जैसी आज्ञा।

जाकर पुनः करभक के साथ आता है।

ये रहे स्वामी। आप पास जा सकते है।

करभक (पास आकर और प्रणाम करके)

स्वामी की जय हो। माताओ की आज्ञा है कि

दुष्यन्त :

क्या आज्ञा है ?

करभक

. कि आज से चौथे दिन पुत्रपिण्डपालन नामक उपवास होगा। उस दिन आयुष्मान् अवश्य वहाँ उपस्थित रहे जिससे उन्हे सन्तोष हो।

दुष्यन्त :

इधर तपस्वियो का आदेश है, उधर माताओ की आज्ञा। उल्लघन दोनो का ही नही किया जा सकता। तो ऐसे मे क्या करना उचित होगा ?

विदूषक :

त्रिशकु की तरह बीच मे लटके रहना !

दुष्यन्त :

सच, मन मे व्याकुलता भर गयी है।

दोनो कार्य

दो अलग-अलग स्थानो पर है,
इसलिए
मन उसी तरह बॅट गया है,
जैसे
नदी का प्रवाह
सामने की चट्टान से टकराकर
दो भागो मे बॅट जाता है।

(सोचकर) मित्र माधव्य, माताएँ तुम्हे भी पुत्र की तरह मानती है, इसलिए मेरी जगह तुम लौटकर चले जाओ। माताओ से कह देना कि मुझे तपस्वियो के कार्य से यहाँ रुकना पड गया है। पुत्र के रूप मे जो भी अनुष्ठान करना हो, वह तुम्ही कर देना।

विदूषक :

देखो, कही यह मत समझना कि मै राक्षसो से डरता हूँ।

दुष्यन्त : (मुसकराकर)

महाब्राह्मण, तुम्हारे बारे मे ऐसा कोई सोच भी सकता है ?

विदूषक :

जाना है, तो मै राजा के छोटे भाई की तरह जाना चाहूँगा।

दुष्यन्त ·

तपोवन के कार्य मे बाधा न पडे, इसलिए अपने पीछे आये सैनिको को भी मै तुम्हारे साथ ही भेज रहा हूँ।

विदूषक : (गर्व के साथ)

तब तो हम अब युवराज हो गये !

दुष्यन्त : (स्वगत)

यह ब्राह्मण है बहुत चचल, कही वहाँ जाकर हमारे प्रणय की बात अन्त पुर मे न कह दे। तो इसे इस तरह समझा दूँ। (विदूषक का हाथ पकडकर, प्रकट) देखो माधव्य, मै ऋषियो के गौरव की रक्षा के लिए ही आश्रम मे रुक रहा हूँ, उस तापस कन्या के लिए

मेरे मन मे तनिक भी अभिलाषा नही है।

कहाँ हम

और

कहाँ वह बाला

जो हरिणी के छौनो के साथ पली है।

वासना क्या है,

इसका तो उसे

तनिक आभास भी नही।

वह तो

हँसी की बात थी मित्र,

जो मैने तुमसे यूँ ही कही थी,

कही

तुम उसे

सच ही न मान लेना।

विदूषक :

आप ऐसा कहते है, तो यही ठीक होगा।

दुष्यन्त :

तो माधव्य, तुम अपनी तैयारी मे लगो, मै तपोवन की रक्षा के लिए उस ओर जाता हूँ।

चले जाते हैं।

।। दूसरा अंक ।।

अंक तीन

कुशा हाथ मे लिए कण्व के एक शिष्य का प्रवेश ।

शिष्य (सोचते हुए, विस्मय के साथ)

कितना प्रभाव है राजा दुष्यन्त का ! सारथी के साथ उनके आश्रम मे आते ही हमारे यज्ञ आदि की सभी बाधाएँ दूर हो गयी ।

बाण खीचने की
तो बात ही अलग,
एक हुँकार जैसे
उनके धनुष की डोरी के
शब्द से ही
बाधाएँ
अपने आप
दूर हो जाती है ।

तो वेदी पर बिछाने के लिए यह कुश याजको को दे आऊँ । (घूम-कर और देखकर, आकाश की ओर) क्यो प्रियवदा, यह खस का लेप और डण्डियो सहित कमल की पत्तियाँ किसके लिए ले जा रही हो ? (सुनने का अभिनय करके) क्या कहा ? धूप खा जाने मे शकुन्तला का शरीर बहुत अस्वस्थ है, उसे ठण्डक पहुँचाने के लिए ? हाँ, प्रियवदा, बहुत यत्न से उसकी देखभाल करो, वह तो कुलपति कण्व के दूसरे प्राण की तरह है। मै भी अभी आर्या गौतमी

के हाथ उसके लिए यज्ञ का शान्ति जल भिजवाता हूँ।

चला जाता है।

विष्कम्भक

कामावस्था मे राजा दुष्यन्त का प्रवेश।

दुष्यन्त (नि श्वास छोडकर, सोचता हुआ)

परिचित हूँ
तापस तेज की प्रचण्डता मे,
वह बाला पराधीन है,
यह भी जानता हूँ,
फिर भी
नीचे को बहते पानी-सा मन
उस दिशा से अब
लौटकर नही आता।

भगवन् कामदेव! फूलो का धनुप और यह तीक्ष्णता! (जैसे स्मरण हो आने से) हाँ, समझ मे आ गया।

समुद्र के गर्भ मे
बडवानल की तरह
आज भी
शिव के क्रोध की ज्वाल
तुम मे जल रही है,
अन्यथा
भस्म होने के बाद भी,
काम,
तुम
मेरे-जैसो के लिए

इतने उत्तापकारी न होते।

इसके अतिरिक्त तुम और चन्द्रमा मिलकर कामियो के विरुद्ध षड्यन्त्र रचते हो, यद्यपि उन्हे तुम दोनो पर इतना भरोसा है।

तुम्हारे बाण फूलो के है,
और
चॉद की किरणे शीतल—
यह
मेरे-जैसे व्यक्ति के लिए सच नही।
चॉद
मुझ पर
किरणो से आग बरसाता है,
और तुम
अपने फूलो के बाण
वज्र-से कठोर बनाकर छोडते हो।

अथवा

प्रिय है मुझे
काम का दिया
यह अविरत मानसिक ताप
यदि
पहले वह
उसे लक्ष्य करने के बाद
फिर
मुझ पर प्रहार करता।

भगवन् काम ! मेरे इतना उलाहना देने पर भी तुम्हे मुझ पर दया नही आती।

अनग,
शत-शत सकल्पो से

व्यर्थ ही
मैने तुम्हारा
मन मे इतना पोषण किया है !
बदले मे
यही तो न सोहता है तुम्हे
कि
कान तक धनुष खीचकर
तुम
मुझी पर
अपने बाण बरसाओ ।

(घूमकर, खेदपूर्वक) विघ्न समाप्त हो जाने से तपस्वियो ने यहाँ से जाने की अनुमति दे दी है । मन अशान्त है, अब कहाँ चलकर इसे बहलाऊँ ? नही, अपनी प्रिया को देखे बिना मुझे शान्ति नही मिल सकती । तो उसी को खोजता हूँ । (ऊपर की ओर देखकर) चमकती धूप का यह समय शकुन्तला प्राय सखियो के साथ मालिनी तट के लताकुञ्जो मे बिताती है । तो उसी ओर चलता हूँ । (घूमकर और देखकर) लगता है अभी-अभी वह कोमलागी पौधो के बीच की इस पगडण्डी से होकर गयी है, क्योकि—

उसके चुने फूलो के वृन्त
अभी
खुले ही है,
और
उसके तोडे पत्तो की डडियाँ
अभी तक
दूधिया बनी है ।

(हवा के स्पर्श-सुख का अभिनय करके) ओह ! इस वनस्थली मे कितनी अच्छी हवा चलती है !

मालिनी की
लहरो के कण अपने मे लिये
और
कमलो की सुवास,
यह हवा ऐसी है
कि इसे
अपने कामना से तपे अगो पर
खुलकर सहना
रुचिकर लगता है।

(देखकर) हाँ, यही बेत के लतामण्डप मे शकुन्तला को होना चाहिए, क्योकि—

बाहर
पीली रेत पर
उसकी पदपक्ति के
नये-नये निशान है,
जो
आगे से कम गहरे
और
पीछे से
जाँघो के भार के कारण
अधिक गहरे है।

तो पेड की ओट मे रहकर देखता हूँ। (वैसा करके, हर्षपूर्वक) ओह! आँखे जैसे सार्थक हो उठी! यह रही वह सामने फलो से ढँके शिलाखण्ड पर। सखियाँ इसकी परिचर्या कर रही है। तो यही लताओ के पीछे छिपा इनकी अन्तरग बाते सुनता हूँ।

देखता हुआ खड़ा रहता है। निर्दिष्ट रूप मे सखियों के साथ शकुन्तला का प्रवेश।

अनसूया प्रियंवदा (हवा करती हुई)

क्यो शकुन्तला, कमलिनी के पत्तो की हवा से कुछ सुख मिल रहा है ?

शकुन्तला : (खेदपूर्वक)

तुम लोग मुझे हवा कर रही हो ?

अनसूया और प्रियंवदा विषादपूर्वक एक-दूसरी की ओर देखती हैं।

दुष्यन्त :

लगता है बहुत अस्वस्थ है बेचारी ! (सोचते हुए) क्या धूप खा जाने से ऐसा हुआ है, या इसकी भी मेरे ही जैसी स्थिति है ? (अभिलाषा के साथ देखकर) नही, मुझे सन्देह नही करना चाहिए।

स्तनो पर
खस का लेप,
और
ढीला मृणाल का वलय, —
किन्तु
इस सन्ताप मे भी
प्रिया के शरीर की कान्ति
मन्द नही हुई।
चाहे
एक-सा होता है ताप
ग्रीष्म ज्वर
और काम-ज्वर का,
फिर भी
ग्रीष्म ज्वर का ताप
युवतियो को
इस तरह

रमणीय नही बना देता।

प्रियंवदा : (अलग से)

लगता है अनसूया, कि उस राजर्षि को पहली बार देखने के समय से ही शकुन्तला का मन अव्यवस्थित है, इसमे और किसी तरह की आशका की बात नही।

अनसूया :

मुझे भी ऐसा ही आभास होता है। तो इसी से क्यो न पूछ लूँ ? (प्रकट) तुझसे कुछ पूछना है, शकुन्तला! लगता है तू शरीर मे बहुत ताप अनुभव कर रही है ?

दुष्यन्त :

हाँ, ऐसा ही तो लग रहा है।

चाँद की किरणो से उज्ज्वल
मृणाल के वलय
धुआँरे पडकर
टूट गये है,
और
शरीर के
अतिशय ताप का
परिचय देते है।

शकुन्तला : (शरीर का ऊपरी भाग शैय्या से ऊँचा उठाकर)

हाँ, पर तू और क्या पूछना चाहती है ?

अनसूया

देख, तेरे मन की बात तो हम नही जानती। परन्तु ऐतिहासिक कथा-काव्यो से कामियो की अवस्था के विषय मे जैसा कुछ जाना-सुना है, वैसी ही तेरी अवस्था जान पडती है। तो बता, तेरे इस कष्ट का वास्तविक कारण क्या है? जब तक रोग का ही ठीक से पता न चले, तब तक तो निदान आरम्भ भी नही किया जा सकता।

दुष्यन्त :

अनसूया ने जैसे मेरे ही मन का तर्क ले लिया है।

शकुन्तला :

कष्ट बहुत है, मै तुम्हे सहसा न बता सकूँगी।

प्रियवदा

अनसूया ठीक कह रही है। क्यो, तू अपनी पीडा को इस तरह छिपाये हुए है ? प्रतिदिन तू पहले से दुबली होती जा रही है। केवल लावण्य की छाया ही तेरे अगो को नही छोड रही।

दुष्यन्त

ठीक कहा है प्रियवदा ने।

कपोल
कान्तिहीन हो गये है,
और
स्तनो मे
वह पहली-सी उठान नही रही,
कटि
और भी क्षीण हो गयी है,
कन्धे
ढीले पड गये है,
और
रग मे
पीलापन घिर आया है।
काम के विकार से
यह बाला,
सन्ताप सहती हुई भी,
पहले से सुन्दर हो उठी है।
एक माधवीलता है यह

जिसके पत्ते
लू लगने से
कुम्हला गये है।

शकुन्तला (नि श्वास छोडकर)

तुमसे नही, तो और किससे कहूँगी ? परन्तु मेरे कारण तुम लोगो को व्यर्थ ही दु ख होगा।

अनसया-प्रियवदा

इसीलिए तो आग्रह कर रही है। अपने लोगो से दु ख बॉट लिया जाय, तो उसे सहना उतना कठिन नही रहता।

दुष्यन्त

सुख-दु ख की सहचरियो के पूछने पर
उनसे यह
मन की बात कहेगी अवश्य,
किन्तु
उस दिन
इसके बार-बार घूमकर देखने पर भी,
इस समय कान
इसका उत्तर सुनने को
कितने उत्कण्ठित है !

शकुन्तला

जब से तपोवन के रक्षक उस राजर्षि पर दृष्टि पडी है ..

आधी बात कहकर लजा जाती है।

अनसूया-प्रियंवदा

हॉ, हॉ, कहती रह।

शकुन्तला

तभी से उसे पाने की आकाक्षा से मेरी यह अवस्था हो रही है।

अनसूया-प्रियंवदा

अनुरूप वर के लिए ही तेरे मन मे कामना जागी है। एक महानदी सागर को छोडकर और कहाँ आश्रय ढूँढ सकती है ?

दुष्यन्त (हर्षपूर्वक)

जो सुनना चाहा था वही सुनने को मिल गया।

गरमी से तपता दिन
स्वय ही
विश्व के लिए
बादलो की छाया ले आता है,
जिस काम ने मुझे इतना तपाया है,
वही इस समय
मुझे
शान्ति भी दे रहा है।

शकुन्तला

उस राजर्षि की अनुकम्पा पाने के लिए, जैसे तुम लोग परामर्श दोगी वैसे ही मै करूँगी। अन्यथा, बस मुझे याद ही कर लिया करना।

दुष्यन्त

इसके यह कहने से अब तनिक भी सन्देह नही रहा। काम व्यक्ति को यही तक तो ला सकता है, इससे आगे सब कुछ प्रयत्न पर निर्भर है। इस समय इसे इस अवस्था मे देखकर भी मुझे सुख मिल रहा है।

प्रियंवदा (अलग से)

इसकी कामना बहुत दूर तक बढ चुकी है। यह अब और तनिक भी विलम्ब सहन नही कर सकती।

अनसूया

पर ऐसा क्या उपाय करे जिससे किसी को पता भी न चले, और तुरन्त इसकी कामना पूर्ति भी हो सके ?

प्रियवदा

किसी को पता न चले, यही बात सोचने की है। तुरन्त पूर्ति मे कोई बाधा नही है।

अनसूया

यह कैसे कहती है तू ?

प्रियवदा

उस दिन उस राजर्षि की आँखो मे तूने उसकी कामना का भाव नही देखा था ? आजकल वह जिस तरह दुबला रहा है, उससे लगता है कि उसे भी इन दिनो नीद नही आती।

दुष्यन्त (अपने को देखकर)

हाँ, ठीक ही तो है।

रात-रात
आँखे
मानसिक ताप के गरम आँसुओ से
भीगी रहती है,
और
उन पर रखे हाथ मे पहना
सोने का कगन,
मैला और बदरग होकर,
बार-बार
नीचे को वहाँ गिरा आता है
जहाँ
धनुष की कसी डोरी खीचने का निशान
मणिबन्ध मे ढँका है,

और तब
उस गिरते कगन को
बार-बार
वहाँ मैं
ऊपर ले जाना पडता है ।

प्रियवदा (सोचती हुई)

मेरे विचार मे इससे एक प्रणय-पत्र लिखवाना चाहिए। मै उसे फूलो मे छिपाकर देवपूजा के बहाने राजा के हाथ मे दे आऊँगी।

अनसूया

हाँ, मुझे भी यह कोमल उपाय अच्छा लग रहा है। शकुन्तला से पूछ, यह क्या कहती है ।

शकुन्तला

तुम लोगो की बात पर मै आपत्ति करूँगी ?

प्रियवदा

तो अपनी अवस्था का निरूपण करते हुए सुन्दर पदावली की एक अच्छी-सी गीतिका सोच डाल ।

शकुन्तला

सोचती हूँ। परन्तु हृदय काँपता है। कही वह मेरा तिरस्कार कर दे, तो ?

दुष्यन्त (हँसकर)

भीरु
तेरे समागम के लिए उत्कण्ठित
वह व्यक्ति
यही खडा है
जिससे तुझे तिरस्कार की आशका है।
याचक को

लक्ष्मी मिले न मिले
परन्तु
लक्ष्मी जिसे चाहे
वह
लक्ष्मी को न मिले,
ऐसा कभी सम्भव है ?
और
हाथी के बच्चे की सूँड-सी जाँघोवाली
सुन्दरी
जिससे तुझे आशका है
कि वह कही तेरे प्रणय को
अस्वीकार न कर दे,
वह व्यक्ति,
प्रणय के लिए उत्सुक,
यही खडा है।
रत्न
पारखी को नही खोजता,
पारखी ही
रत्न की खोज मे जाता है।

अनसूया-प्रियवदा

तू चाहे अपने गुणो को छोटा करके देख, पर सन्ताप मिटानेवाली शरत् की चाँदनी को कौन छत्र लेकर अपने से दूर रखना चाहेगा ?

शकुन्तला (मुसकराकर)

तो ठीक है, मै ऐसा ही करती हूँ।

दुष्यन्त

कितनी अच्छी जगह खडा होकर मै अपलक आँखो से इसे देख पा रहा हूँ।

इसकी आँखे
पदरचना मे लीन है
और
एक भौंह ऊपर को उठी है।
ऐसे मे भी
कपोल का रोमाच
मेरे प्रति इसकी भावना का
परिचय दे रहा है।

शकुन्तला

देखो, एक गीतिका मैने सोच ली है। परन्तु लिखने की सामग्री तो यहाँ है ही नही।

प्रियवदा

यह कमलिनी का पत्ता है न—तोते के पेट की तरह कोमल। इसी पर अपने नखो से एक-एक अक्षर बनाकर लिख डाल।

शकुन्तला (तदनुसार लिखने का अभिनय करके)

लो, सुनो। देखो ठीक बन पडी है या नही।

अनसूया-प्रियवदा :

हम सुन रही है।

शकुन्तला (पढकर सुनाती हुई)

तेरे हृदय की बात
मै नही जानती,
निष्ठुर,
किन्तु मेरे हृदय को
रात-दिन
काम की ज्वाला
बुरी तरह
तपाती है।

मेरे अगो के
हर मनोरथ की पूर्ति
अब तेरे,
केवल तेरे,
हाथ मे है।

दुष्यन्त :

यही अवसर है इसके सामने आने का। (सहसा सामने आकर)
कोमलागि,
तुझे काम की ज्वाला
केवल तपाती है
किन्तु मुझे वह
सर्वथा
जलाये देती है।
चढता दिन
चॉद को जिस तरह गलाता है,
उस तरह
कमलिनी को नही जला पाता।

अनसूया-प्रियवदा : (राजा को देखकर प्रसन्नता से उठती हुई)

ओह! तत्काल और मनचाहा फल लानेवाले मनोरथ है आप!
स्वागत है आपका।

शकुन्तला उठने का प्रयत्न करती है।

दुष्यन्त

नही, नही, यह कष्ट मत करो।
बहुत ताप है तुम्हारे अगो मे
जिससे
ये फूल कुम्हला गये है
और

मृणाल के वलय मसलकर टूट गये है।
नही, उठो नही,
तुम्हारे ये अग
इस समय
उपचार का पालन नही कर सकते।

शकुन्तला : (कुछ अव्यवस्थित भाव से, स्वगत)
क्या हुआ है हृदय, तब तो तू इतना व्याकुल था, और अब तुझसे कुछ भी कहा नही जा रहा ?

अनसूया :
-आप यहाँ शिलाखण्ड के सिरे पर बैठ जाएँ।

शकुन्तला थोड़ा सरक जाती है।

दुष्यन्त (बैठकर)
आपकी सखी को शरीर के ताप से बहुत कष्ट तो नही ?

प्रियंवदा : (मुसकराकर)
अब औषधि मिल गयी है, शान्त हो जाएगा।

शकुन्तला लजा जाती है।

देखिए, यह तो स्पष्ट ही है कि आप दोनो के मन मे एक-दूसरे के लिए अनुराग है। फिर भी इसके प्रति स्नेह मुझे दोहराकर कहने के लिए विवश कर रहा है।

दुष्यन्त :
बात को आप रोके नही, मुँह पर आयी बात कही न जाय, तो उससे दुःख ही होता है।

प्रियवदा .
तो सुने

दुष्यन्त
- मै ध्यान से सुन रहा हूँ।

प्रियवदा :

धर्म यही है न कि राजा को आश्रमवासियो का सन्ताप दूर करना चाहिए ?

दुष्यन्त :

बताएँ, मुझसे क्या चाहती है ?

प्रियंवदा :

आपके प्रति अनुराग के कारण ही इसकी यह दशा हुई है, इसलिए इसके प्राण आपकी कृपा पर ही निर्भर है।

दुष्यन्त ·

परन्तु यह अनुराग तो दोनो ओर से है। फिर भी यह सुनकर मै अनुगृहीत हूँ।

शकुन्तला : (अनसूया की ओर देखकर)

देखो, राजर्षि अपने अन्त पुर के विरह से व्याकुल होगे, तुम इस तरह इन्हे रोकने की चेष्टा मत करो।

दुष्यन्त :

केवल तुम्ही
मेरे हृदय मे हो,
अब
और किसी के लिए
यहाँ स्थान नही,
मतवाले खजन की-सी आँखो वाली
सुन्दरी !
तुम यदि कुछ और सोचती हो,
तो काम के बाणी से आहत मै
अब
और भी आहत हूँ।

अनसूया ·

सुना है राजाओं के बहुत-बहुत प्रणय होते है। इसलिए ऐसा कुछ न हो जिससे इसके बन्धुओ को बाद मे इसके लिए चिन्तित होना पडे।

दुष्यन्त

अब अधिक क्या कहूँ ?

बहुत-सी पत्नियो के रहते भी
मेरे कुल की
दो ही प्रतिष्ठाएँ होगी,
एक,
समुद्र से घिरी पृथ्वी,
और दूसरी,
आपकी यह सखी।

अनसूया-प्रियवदा .

यह सुनकर हम निश्चिन्त हुई।

शकुन्तला के मुख पर प्रसन्नता की रेखाएँ दिखायी देती हैं।

प्रियवदा . (अलग से)

देख अनसूया, जैसे गरमी मे बरसाती हवा का स्पर्श पाकर मोरनी के प्राण धीरे-धीरे लौटने लगते है, कुछ वैसी ही स्थिति शकुन्तला की हो रही है।

शकुन्तला :

देखो, तुम लोग राजा से क्षमा माँगो। हम शिष्टाचार को भूलकर खुले मुँह इनके पीछे जाने क्या-क्या बकती रही है।

अनसूया-प्रियंवदा . (मुसकराकर)

जिसने ऐसा कुछ कहा है, वही क्षमा माँगे, किसी और को क्या पडी है !

शकुन्तरा :

अपराध क्षमा करे। पीठ पीछे कौन क्या नही कहता ?

दुष्यन्त : (मुसकराकर)

कदली-सी जाँघो वाली
सुन्दरी,
क्षमा कर सकता हूँ यह अपराध
यदि तुम
यहाँ
अपने अगो से मसले फूलो के आस्तरण पर,
अपना मानकर,
मुझे
थोडा-सा स्थान दे दो,
और मुझे
मन का सन्ताप
मिटा लेने दो।

प्रियवदा : (परिहास के स्वर मे)

बस इतने से ही सन्तुष्ट हो जाइएगा ?

शकुन्तला : (जैसे क्रोध से)

ठहर, ठहर, लाज तो तुझे जैसे छू नही गयी। मेरी यह अवस्था है, और तुझे फिर भी हँसी सूझ रही है !

अनसूया : (बाहर की ओर देखकर)

देख प्रियवदा वह बेचारा हरिण शावक इधर-उधर आँखे घुमाता अपनी खोयी हुई माँ को ढूँढ रहा है। चलकर मै उसे उसकी माँ से मिला दूँ।

प्रियवदा :

बहुत चचल है यह शावक ! तुझ अकेली से यह सँभलेगा नही। मै भी साथ चलकर तेरी सहायता करती हूँ।

दोनो उठकर चल देती है।

शकुन्तला :

मै तुम दोनो को यहाँ से नही जाने दूँगी। देखती नही मै अकेली हूँ यहाँ ?

अनसूया-प्रियंवदा

राजा तेरे पास है, फिर तू अकेली किस तरह है ?

चली जाती है।

शकुन्तला .

अरे, ये तो सचमुच चली गयी !

दुष्यन्त :

घबराओ नही। उनके स्थान पर तुम्हारा यह सेवक यहाँ उपस्थित है। बताओ—

क्या करूँ ?
कमल के भीगे पत्ते से
तुम्हे हवा करूँ,
जिससे
नन्ही-नन्ही बूँदे बिखरे
और तुम्हारा सन्ताप दूर हो ?
या
लाल कमल-से दोनो पैर
गोदी मे लेकर
धीरे-धीरे दबाऊँ,
जिससे
तुम्हे कुछ सुख मिल सके ?

शकुन्तला :

न, एक सम्माननीय व्यक्ति को ऐसे काम मे लगाकर मै अपराधिनी नही बनूँगी।

उस अवस्था में जैसे बन पड़ता है,

उठकर जाना चाहती है।

दुष्यन्त : (उसे रोककर)

न-न, दिन अभी ढला नही, और तुम्हारे शरीर की ऐसी अवस्था है।

फूलो की शैया छोडकर,
कमलिनी के पत्तो से स्तनो को ढँके
धूप मे निकलकर
कैसे जाओगी तुम,
जबकि तुम्हारे कोमल अग
पहले ही
पीडा से इतने क्लान्त है?

बलपूर्वक उसे रोकता है।

शकुन्तला

छोडो, छोडो मुझे। मै अपने अधीन नही हूँ। सखियो के अतिरिक्त मेरा कोई सहारा भी नही है। मै अब अकेली यहाँ नही ठहर सकती।

दुष्यन्त .

ओह! लज्जित कर दिया तुमने मुझे।

शकुन्तला

मै आपसे कुछ नही कह रही, केवल अपने भाग्य को कोस रही हूँ।

दुष्यन्त

भाग्य ने ऐसा अवसर दिया है, फिर उसे क्यो कोस रही हो?

शकुन्तला

कोसूँ कैसे न, जो उसने मुझे अपने पर अधिकार न देकर भी किसी के गुणो पर अनुरक्त कर दिया है?

दुष्यन्त (स्वगत)

मनमे चाहे
कितनी उत्कण्ठा हो

फिर भी
पुरुष के चाहने पर
उसे मना ही करती रहेगी,
समागम के सुख की
चाहे कितनी अभिलाषा हो,
फिर भी
आत्मसमर्पण मे
आनाकानी ही करेगी।
लगता है
कि समय पाकर
कामदेव ही इन्हे पीडा नही देता,
व्यर्थ समय नष्ट करके
ये कुमारियाँ भी
कामदेव को उतना ही सताती है।

शकुन्तला फिर जाने लगती है।

दुष्यन्त

तो मै ही अपने मन की क्यो न करूँ ?

बढकर उसके वस्त्र का सिरा पकड़ लेता है।

शकुन्तला

देखो पौरव, इस तरह मर्यादा का उल्लघन मत करो। आस-पास ऋषि लोग आ-जा रहे होगे।

दुष्यन्त :

अपने गुरुजनो की ओर से कोई आशका मत करो । आचार्य कण्व को धर्म का ज्ञान है, उन्हे तुम्हारे किसी आचरण से दुःख नही होगा।

सुना जाता है
कि बहुत-बहुत ऋषि-कन्याओ ने

पहले भी
गान्धर्व विधि से विवाह किया है,
और
बडो ने
सदा उसका
समर्थन ही किया है।

(आस-पास देखकर) अरे, मै तो बाहर प्रकाश मे आ गया!

शकुन्तला को छोड़कर उन्ही पैरो लौट जाता है।

शकुन्तला (एक पैर आगे रखते ही लौटकर विशेष भगिमा के साथ)
मै तुम्हारी इच्छा पूरी नही कर सकी, पौरव, और परिचय केवल बातचीत तक का ही है। फिर भी इस व्यक्ति को भूलै मत जाना।

दुष्यन्त

सुन्दरी!
तुम
दूर जाकर भी
मेरे हृदय से दूर नही हो सकती।
दिन ढलने पर
पेड से परे जाती छाया
पेड के मूल से
अलग नही होती।

शकुन्तला (कुछ दूर जाकर, स्वगत)
यह बात सुनने के बाद तो मेरे पैर आगे बढ ही नही रहे। तो यही पास के कुरबक वृक्षो की ओट मे खडी होकर इसकी प्रति-क्रिया देखती हूँ।

दुष्यन्त :

ओह ! मुझसे उदासीन होकर तुम जा कैसे सकी जबकि तुम्हारा अनुराग ही मेरे जीवन का एकमात्र आधार है ?

शकुन्तला :

यह सुनकर तो जाने की सामर्थ्य बिलकुल ही नही रही।

दुष्यन्त

उसके चले जाने से लता-मण्डप सूना-सा लगने लगा। अब मै यहाँ रुककर क्या करूँगा ? (आगे देखकर) ओह ! पर जाऊँ भी कैसे ?

सामने पडा है
उसकी कलाई से गिरा
यह मृणाल-वलय
जिसमे
उसके शरीर के खस लेप की
गन्ध समायी है।
यह वलय नही,
एक अर्गला है
जो उसने जाते हुए
मेरे हृदय पर लगा दी है।

भावना के साथ उसे उठा लेता है।

शकुन्तला : (अपने हाथ की ओर देखकर)

ओह ! दुबलेपन के कारण यह मृणाल-वलय नीचे जा गिरा और मुझे पता तक नही चला।

दुष्यन्त : (मृणाल-वलय को वक्ष से लगाकर)

तेरी कोमल बाँह से गिरा
यह मृणाल-वलय
अचेतन होते हुए भी
इस दुखी वक्ष से लगकर

इसे
जो आश्वासन दे रहा है
वही आश्वासन
इसने तुझसे चाहा था,
पर
तूने नही दिया ।

शकुन्तला :
और देर करने की सामर्थ्य मुझमे नही । अब इसी बहाने सामने पहुँच जाती हूँ ।

दुष्यन्त : (उसे देखकर प्रसन्नतापूर्वक)
तो मेरे प्राणो की अधिकारिणी लौट आयी ? इतना दु ख देने के बाद भाग्य ने कृपा की, यह उसका उपकार ही है ।

प्यास से सूखे गले से
पक्षी ने
'पानी' कहा,
और तभी
नये बादल से बरसी
एक बूँद
सहसा
उसके मुँह मे आ पडी ।

शकुन्तला : (राजा के पास आकर)
देखिए, आधे रास्ते मे मुझे ध्यान आया कि मेरा मृणाल-वलय यही गिर गया है । इसे लेने के लिए ही मुझे लौटकर आना पडा । मेरा हृदय कह रहा था कि आपने इसे उठा लिया होगा । इसे तुरन्त मुझे लौटा दे । ऐसा न हो कि मुनियो मे से किसी की दृष्टि हम पर पड जाय ।

दुष्यन्त :

एक शर्त पर लौटा सकता हूँ ।

शकुन्तला :

क्या शर्त होगी ?

दुष्यन्त :

कि मैं ही इसे इसके स्थान पर बाँधूँगा ।

शकुन्तला :

ओह ! अब और उपाय ही क्या है ? जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा करें ।

पास आ जाती है ।

दुष्यन्त :

शिलाखण्ड के इस भाग पर बैठ जाएँ ।

घूमकर दोनों बैठ जाते हैं ।

दुष्यन्त : (शकुन्तला का हाथ अपने हाथ में लेकर)

यह स्पर्श !

शिव के
क्रोध की ज्वाला से जले
काम-वृक्ष का
क्या यह नन्हा-सा अंकुर है,
जिसे
अमृत की वर्षा से
दैव ने
फिर से उगा दिया है ?

शकुन्तला (स्पर्श से रोमांचित होकर)

शीघ्रता करें, आर्यपुत्र !

दुष्यन्त : (हर्षपूर्वक, स्वगत)

अब हृदय को पूरा विश्वास हुआ । इस तरह तो केवल पति को ही

सम्बोधित किया जाता है। (प्रकट) देखो, इस वलय की गाँठ ठीक नही है। कहो तो मै दूसरी तरह से इसकी गाँठ लगा दूँ।

शकुन्तला (मुसकराकर)

आपको जैसा ठीक लगे।

दुष्यन्त : (बहाने से समय लेते हुए)

देखो—

वलय नही, यह
दूज का चन्द्रमा है,
जो
विशेष शोभा के लिए
आकाश छोड आया है,
और इस मृणाल के रूप मे
तुम्हारी
श्यामलता-सी सुन्दर
कलाई मे बँधकर
दोनो ओर से
जुड जाना चाहता है।

शकुन्तला .

मै ठीक से देख नही पा रही। हवा से उडकर कर्णफलो का पराग आँखो मे पड गया है जिससे आँखे धुँधला गयी है।

दुष्यन्त (मुसकराकर)

अनुमति दो तो मै फूँक मारकर इसे निकाल दूँ ?

शकुन्तला

बडी कृपा होगी। परन्तु मुझे आपका विश्वास नही है।

दुष्यन्त

नही, ऐसा कुछ नही होगा। नया-नया सेवक स्वामी के आदेश से आगे जाकर अपनी ओर से कुछ नही करता।

शकुन्तला .

यह अत्यधिक आदर ही तो अविश्वास का कारण है ।

दुष्यन्त (स्वगत)

मुझे जो यह-सेवा का इतना सुन्दर अवसर मिला है, इसे मै ऐसे ही नही जाने दूँगा ।

शकुन्तला उसे रोकने का अभिनय करती चुप रहती है ।

दुष्यन्त

खजन-सी आँखो वाली सुन्दरी, डरो नही, हम कोई धृष्टता नही करेंगे ।

शकुन्तला एक बार हल्के से आँखें उठाकर फिर लज्जा से सिर झुकाये बैठी रहती है ।

दुष्यन्त (अँगुलियो से उसका मुँह ऊँचा उठाकर, स्वगत)

यह कोमल अधर
जिसने आज तक
किसी तरह का
दश नही जाना,
अब
हल्के-हल्के काँपकर
जैसे
मुझ प्यासे को
रसपान की अनुमति दे रहा है ।

शकुन्तला

लगता है आर्यपुत्र को ठीक से पता नही चल रहा ।

दुष्यन्त

से देख नही पा रही ।

शकुन्तला

रहने दे, मुझे अब ठीक दिखायी दे रहा है। आपके इस उपकार का बदला नही चुका सकी, इसके लिए लज्जित हूँ।

दुष्यन्त .

मै और क्या कहूँ ?

तुम्हारा उपकार
इतना ही है
कि तुमने मुझे
अपना मुँह सूँघ लेने दिया ।
भौरे को सन्तोष
केवल
कमल की सुगन्धि पाकर ही
हो जाता है ।

शकुन्तला : (मुसकराकर)

और यदि सन्तोष न हो, तो वह क्या करता है ?

दुष्यन्त

तो यह करता है।

उसे चूमने लगता है, परन्तु शकुन्तला अपना मुँह छिपा लेती है।

नेपथ्य से :

ए चकवी, अब अपने सहचर को बुला ले, रात उतर रही है ।

शकुन्तला : (सुनकर, घबरायी-सी)

आर्यपुत्र, लगता है तात कण्व की धर्म-बहन आर्या गौतमी आ रही है। मेरी अस्वस्थता का समाचार पाकर वे पता करने आयी होगी। आप यहाँ पेड के पीछे छिप रहे ।

दुष्यन्त :

हाँ, यही ठीक होगा।

अकेला एक ओर खडा हो जाता है। हाथ में एक पात्र लिये गौतमी आती है।

गौतमी :

क्या हुआ है, बेटी ? सुना है शरीर कुछ ठीक नही है ? मै यह शान्ति-जल लायी हूँ जिससे देवताओ की तुझ पर कृपा रहे।

शकुन्तला :

अनसूया और प्रियवदा अभी-अभी मालिनीतट की ओर गयी है।

गौतमी · (शान्तिजल शकुन्तला पर छिडककर)

चिरकाल तक जीती रह, बेटी और सदा स्वस्थ रह। जल से शरीर का ताप कुछ कम हुआ है ?

शकुन्तला ·

बहुत कम हो गया है।

गौतमी

दिन ढल रहा है। चल अब पर्णशाला मे लौट चले।

शकुन्तला (किसी तरह उठकर, स्वगत)

हृदय, पहले कामनापूर्ति का अवसर मिलने पर तो तूने समय यूँही गँवा दिया, अब सह इस दु ख को। (एकाध पग चलते ही लौटकर, प्रकट) लता-मण्डप, तू ही मेरा सन्ताप दूर करनेवाला है ! याचना है कि फिर भी तेरा उपभोग कर सकूँ, इसका अवसर देना।

गौतमी और शकुन्तला चली जाती हैं।

दुष्यन्त : (पहले के स्थान पर आकर, नि श्वास के साथ)

कामना-पूर्ति मे कितनी बाधाएँ आ पडती है !

बार बार

अधर को ढाँपती
उसकी उँगलियाँ,
घबराहट के कारण
पहले से और सुन्दर हुए मुँह से
निकलती 'ना',
और
झुकी-झुकी-सी
उसकी घनी पलके, —
मैने
कन्धे मे छिपते उसके मुँह को
किसी तरह
उठा तो लिया,
पर भाग्य
कि फिर भी चूम नही पाया।

अब कहाँ चलना चाहिए ? या कुछ देर अभी लतामण्डप मे ही रुका रहूँ क्योकि यही विश्राम करके वह गयी है।

शिलाखण्ड पर बिखरे
फूलो की सेज—
उसके शरीर से मसली हुई,
कमलिनी के पत्ते पर
उसके नाखूनो से लिखा
प्रणय-लेख,
और
उसके हाथ से गिरा
मृणाल-वलय, —
आँखें
इन पर से हटाये हटती नही !

बेत का यह लतामण्डप
चाहे अब सूना है,
फिर भी
यहाँ से अभी
निकलकर जाते नही बनता।

(सोचता हुआ) अच्छा किया मैने जो उसे पास पाकर भी समय यूँही गँवा दिया! और अब—

बाधा आ पडने से दु खी
यह मूढ मन
सोचता है
कि इसके बाद
यदि फिर कभी
एकान्त मे
उससे मिलने का अवसर प्राप्त होगा,
तो यह समय व्यर्थ नही गँवाएगा,
क्योकि
उपभोग के ऐसे अवसर
सुलभ नही होते।
मूढ
अब यह सोचता है,
पर उसके सामने
इसके सोच-विचार को
जाने क्या हो गया था?

नेपथ्य मे :

सुनो, राजा, सुनो!
सन्ध्याकालीन
यज्ञ का आरम्भ होते ही

आग की वेदी को
साँझ के बादलो जैसी पीली
राक्षसो की डरावनी छायाओ ने
चारो ओर से
घेर लिया है !

दुष्यन्त : (सुनकर ओजपूर्ण स्वर मे)
डरो नही, तपस्वियो ! मै बस आ ही रहा हूँ।

चला जाता है ।

।। तीसरा अंक ।।

अंक चार

फूल चुनने का अभिनय करती अनसूया और प्रियवदा का प्रवेश ।

अनसूया :

एक बात कहूँ, प्रियवदा ? गान्धर्व विवाह करके शकुन्तला ने चाहे अपने अनुरूप पनि पा लिया है, फिर भी मेरा मन निश्चिन्त नही है ।

प्रियवदा :

क्यो ?

अनसूया :

यज्ञ समाप्त हो जाने से ऋषियो ने आज राजा को यहाँ से लौट जाने दिया है । अब नगर मे जाकर अपने अन्त पुर की स्त्रियो से मिलने के बाद जाने उसे इसकी याद आती है या नही ।

प्रियंवदा :

इसका-तू विश्वास रख । ऐसी विशेष आकृति के लोग गुणहीन नही होते । हॉ, सोचने की बात तो यह है कि तीर्थयात्रा से लौटकर जब तात कण्व इस बात को जानेगे, तो उनकी क्या प्रतिक्रिया होगी ।

अनसूया :

तू मुझसे पूछे, तो मै कहूँगी कि वे इसका समर्थन ही करेगे ।

प्रियंवदा :

यह तू कैसे कहती है ?

अनसूया :

बडो का पहला दायित्व यही तो होता है कि लडकी किसी अनुरूप वर को सौपी जाय । यह कार्य यदि दैव की ओर से हो जाए, तो उनके लिए तो सन्तोष की ही बात है।

प्रियवदा :

तू ठीक कहती है। (फूलो की टोकरी मे देखकर) मै समझती हूँ, पूजा के लिए इतने फूल काफी होगे।

अनसूया :

अभी थोडे और चुन ले—शकुन्तला को भी तो अपने सौभाग्य-देवता की आराधना करनी है।

प्रियवदा :

ठीक है।

फिर फूल चुनने का अभिनय करती है।

नेपथ्य से :

सुनो, यह मै यहाँ हूँ।

अनसूया : (सुनकर)

लगता है ये किसी अतिथि के शब्द है।

प्रियवदा :

वहाँ पर्णशाला मे शकुन्तला है न ।

अनसूया :

है तो, पर आज उसका मन उसके पास नही है। अब रहने दे, इतने ही फूलो से काम चल जाएगा।

चल देती है।

नेपथ्य मे :

आ । मै अतिथि हूँ और तू इस तरह मेरा अनादर कर रही है ?

जिसके ध्यान मे डूबी

तू,
सामने आए
मुझ तपस्वी को भी
नही देख पा रही,
वह,
याद दिलाने पर भी
तुझे उसी तरह भूला रहेगा,
जैसे एक पागल
अपनी पहले कही बात को
भूल जाता है !

प्रियवदा :

ओह ! वही हुआ जिसकी आशका थी। सूना मन लिए पडी रहने के कारण शकुन्तला से किसी आदरणीय व्यक्ति के प्रति अपराध हो गया है।

अनसूया (सामने की ओर देखकर)

जिस किसी के प्रति नही, महर्षि दुर्वासा के प्रति जो कि जीता ही क्रोध मे है। अब शाप देकर पैर पटकता वह जल्दी से लौटा जा रहा है।

प्रियवदा :

जलाने की शक्ति आग को छोडकर और किसमे होगी ? तू जा, पैर पकडकर उसे लौटा ला। तब तक मै इसके लिए अर्घ्य और जल की व्यवस्था करती हूँ।

अनसूया

मै जा रही हूँ।

चली जाती है ।

प्रियंवदा (चलते हुए फिसलने का अभिनय करके)

ओह ! घबराहट मे पॉव फिसल जाने मे फूलो की टोकरी हाथ से

गिर गई।

अनसूया : (आकर)

वह, क्रोध का अवतार, किसी की बात वह सुनता है ? फिर भी थोडा-सा मैने उसे पिघला लिया है।

प्रियवदा

उससे इतना ही बहुत है। हाँ, बता कैसे तूने उसे पिघलाया है ?

अनसूया

जब वह किसी भी तरह लौटने को तैयार नही हुआ, तो मैने पैरो पर गिरकर कहा कि आपके तप का प्रभाव वह बेचारी नही जानती, इसलिए बेटी समझकर उसका यह पहला अपराध क्षमा कर दे।

प्रियवदा

फिर ?

अनसूया

बोला कि मेरी कही बात तो अब लौट नही सकती। हाँ, यदि स्मारक के रूप मे दिया उसका कोई आभरण यह उसे दिखा देगी, तो इसके सिर से शाप की छाया उतर जाएगी। बस यह कहते ही तुरन्त चलता हुआ।

प्रियंवदा

तब तो आश्वासन रखा जा सकता है। जाते हुए उस राजर्षि ने स्वय ही अपने नाम की अँगूठी स्मारक के रूप मे शकुन्तला के हाथ मे दी थी। इसलिए शाप उतरने का उपाय तो अपने पास है ही।

अनसूया

तो चल, उसकी देवपूजा तो पूरी करा दे।

घूमती है।

प्रियंवदा (देखकर)

अनसूया देख, शकुन्तला कैसे बाएँ हाथ पर ठोडी रखे चित्रलिखित-सी बैठी है। जिस तरह यह राजा की याद मे डूबी है, उससे इसे अपना ही ध्यान नही है, अतिथि की तो बात ही क्या ?

अनसूया

सुन, यह बात हम दोनो के बीच ही रहनी चाहिए। शकुन्तला का हृदय कोमल है, वह इस जानकारी से बची ही रहे, तो अच्छा है।

प्रियंवदा

नवमालिका के पौधे को गरम पानी से भी कोई सीचता है ?

विष्कम्भक

सोकर उठे कण्व-शिष्य का प्रवेश।

शिष्य

प्रवास से लौटे आचार्य कण्व ने मुझे समय का निश्चय करने का आदेश दिया है। तो खुले मे निकलकर देखूँ कि रात कितनी शेष है। (घूमकर और देखकर) अरे! रात तो प्रभात मे घुल-मिल गयी।

एक ओर
वनस्पतियो का प्राण
चाँद
अस्त होने को है,
और दूसरी ओर
अरुण के रथ पर आते
सूर्य का
आविर्भाव होने को है।
एक ज्योति का क्षय,
और दूसरी का उदय—

यही एक नियम है
जिससे
जीवन की परिस्थितियाँ
बनती-बदलती रहती है।

और—

कमलिनी की वह रमणीयता
जो चाँद के अस्त होने से पहले
आँखो को
मुग्ध करती थी,
अब केवल
स्मरण का ही विषय रह गयी हे।
सच,
प्रिय के दूर चले जाने का दु ख
किसी भी अबला से
सहा नही जाता।

और—

बेरियो पर पडी
ओस की बूँदो को
प्रत्यूष ने रँग दिया है ,
अभी-अभी जागा मोर
घास की कुटी से
बाहर आ रहा है,
और
वेदी के पास
अपने खुरो से खोदी भूमि से
यह हरिण,
अँगडाई लेता,

पीछे से ऊँचा होकर,
पैरो पर उठना चाह रहा है।

और—

पर्वतराज सुमेरु के शिखर पर
पाँव रखकर,
अन्धकार का नाश करते हुए,
जिसने
पूरे आकाश को छा लिया था,
वही यह चाँद
अपनी बची-खुची किरणे लिये
अब आकाश से नीचे गिर रहा है।
कोई कितना भी बडा क्यो न हो,
बहुत ऊँचे चढने का
परिणाम यही होता है
कि उसे
नीचे आना पडता है।

अनसूया (बिना पट-परिवर्तन के प्रवेश करके)

वासनाओ से दूर रहने वाले किसी भी व्यक्ति पर कभी ऐसी न बनी होगी जैसी उस बेचारी शकुन्तला पर आ बनी है।

शिष्य

तो जाकर गुरु से कह दूँ कि होम का समय हो गया है।

चला जाता है।

अनसया

रात बीत गयी और प्रभात हो गया । अब जल्दी से उठ जाना चाहिए। पर बहुत जल्दी उठकर भी क्या करूँगी ? मेरे हाथ-पैर तो प्रात के आवश्यक कार्य भी ठीक से नही कर पा रहे। अब कामदेव की ही कामना पूरी हो जिसने हमारी सीधी-सादी शकुन्तला को

एक ऐसे व्यक्ति के साथ जोड दिया है जो उसे झूठे वचन देकर यहाँ से चला गया है। (याद करके) पर उस राजर्षि का भी दोप नही, यह तो दुर्वासा के शाप का ही प्रभाव है। नही तो, तब ऐसी-ऐसी बाते करने के बाद अब इतना समय बीत जाने पर भी उसने कोई समाचार क्यो नही भेजा ? (सोचकर) तो उसे स्मरण दिलाने के लिए वह अँगूठी भिजवा देती हूँ। पर दिन-रात तप का कष्ट सहने वाले इन तपस्वियो मे से किससे ऐसी प्रार्थना की जाय ? जहाँ एक ओर शकुन्तला को दोष देना सम्भव नही; वहाँ दूसरी ओर प्रवास से लौटे तात कण्व को यह बताया भी कैसे जाय कि उसने दुष्यन्त से विवाह कर लिया है, और अब एक जीव को जन्म देने वाली है ?

प्रियवदा (प्रवेश करके)

चल अनसूया, यदि शकुन्तला की विदाई देखने की उत्सुकता है, तो जल्दी से चल !

अनसूया (आश्चर्य के साथ)

यह कैसे ?

प्रियंवदा

मै अभी-अभी शकुन्तला के पास यह देखने गयी थी कि उसे रात को ठीक मे नीद आयी या नही।

अनसूया

फिर ?

प्रियंवदा

वहाँ देखा कि वह लज्जा से सिर झुकाये खडी है, और तात कण्व उसे बाँहो मे लेकर, उससे कह रहे है, 'यह इस यजमान का भाग्य है बेटी, कि आँखे धुएँ से रुँधी होने पर भी इसकी आहुति यज्ञ की आग मे ही गिरी। अच्छे शिष्य को दी विद्या की तरह तू आज मेरे लिए सार्थक सिद्ध हुई है। आज ही मै तुझे ऋषियो के

सरक्षण मे तेरे पति के पास भेज दूँगा।'

अनसूया .

पर तात कण्व को इस घटना का पता किसने दिया ?

प्रियवदा

वे हवन के लिए अग्नि के पास बैठे, तो एक छन्दमयी अशरीर वाणी ने।

अनसूया :

क्या थी वह वाणी ?

प्रियंवदा

वाणी थी—

सुनो ब्राह्मण,
तुम्हारी कन्या
शम्बा की टहनी की तरह
आज
अपने अन्दर एक आग लिये है
क्योकि
विश्व-कल्याण के लिए
उसने
दुष्यन्त का बीज
अपने मे धारण किया है।

अनसूया : (प्रियवदा को आलिगन मे लेकर)

कितनी अच्छी बात हुई यह ! पर शकुन्तला को आज ही भेज दिया जाएगा, इसलिए इस सुख मे एक व्यथा भी है।

प्रियवदा

हम अपनी व्यथा को किसी तरह बहला लेगी, पर वह बेचारी तो वहाँ जाकर निश्चिन्त हो।

अनसूया

इसी दिन के लिए मैने आम की डाल से लटकती इस नारियल की पिटारी मे नागकेसर का पराग रख छोडा है, जिसकी गन्ध दिनो तक बनी रहती है। तू इसे निकालकर कमलिनी के पत्ते पर डाल ले। मै तब तक जाकर गोरोचन, तीर्थो की मिट्टी और दूब की कोपलो से मगल-सामग्री तैयार करती हूँ।

प्रियवदा तदनुसार कार्य करने लगती है। अनसूया चली जाती है।

नेपथ्य से

सुनो गौतमी, ऋषि शार्ङ्गरव और शारद्वत से कह दो कि बेटी शकुन्तला को साथ ले जाने के लिए तैयार हो जायँ।

प्रियवदा

अनसूया, अब जल्दी कर, हस्तिनापुर जाने के लिए ऋषियो को बुलाया जा रहा है।

अनसूया (सामग्री हाथ मे लिए प्रवेश करके)

आ, चले।

दोनो घूमती है।

प्रियवदा (देखकर)

वह देख, सूर्योदय के बाद स्नान करके शकुन्तला वहाँ बैठी है। अन्न से भरे मगलपात्र लिए स्वस्तिवाचन के लिए आयी तापसियो ने उसे घेर रखा है। चल, हम भी वही पास चले।

निर्दिष्ट रूप मे तापसियो के साथ शकुन्तला का प्रवेश।

शकुन्तला

मै आप सबकी वन्दना करती हूँ।

गौतमी

जा बेटी, जाकर 'देवी' शब्द की अधिकारिणी बन और पति को

मान और सुख दे।

तापसियाँ

और वीर पुत्र को जन्म दे।

आशीर्वाद देकर गौतमी के अतिरिक्त सब चली जाती हैं।

अनसूया-प्रियंवदा (पास आकर)

क्यो, ओषधि-जल से तेरा स्नान हो गया ?

शकुन्तला

स्वागत करती हूँ तुम दोनो का। यहाँ बैठो।

अनसूया-प्रियंवदा (बैठकर)

तू थोडी सीधी हो जा। हम तेरा मगल-प्रसाधन करेगी।

शकुन्तला

अवसर के अनुरूप तो यह है ही, पर आज इसका मेरे लिए और भी मूल्य है। आज के बाद तो तुम्हारे हाथो का प्रसाधन मेरे लिए दुर्लभ हो जाएगा।

आँखो मे आँसू आ जाते है।

अनसूया-प्रियंवदा

देख, मगल-कार्य के समय इस तरह रोते नही।

प्रियवदा

तेरे रूप को सजाना तो चाहिए आभूषणो से। आश्रम की सामग्री से प्रसाधन करना तो इसका तिरस्कार ही है।

आभूषण हाथ में लिये ऋषिकुमार हारीत का प्रवेश।

हारीत

ये रहे आभूषण। इनसे इसे सजाओ।

सब देखकर चकित होती है

गौतमी

ये तुम्हे कैसे मिले, हारीत ?

हारीत

तात कण्व के प्रभाव मे ।

गौतमी

उनकी मानसिक सिद्धि से ?

हारीत

नही । तात कण्व ने हमे आदेश दिया था कि शकुन्तला के लिए पेड-पौधो से फूल तोड लाओ । जब हम इसके लिए गये, तो—

किसी पेड से हमे
चाँद-सा उजला
मगल वस्त्रो का जोडा मिला,
किसी ने
पैर रँगने का सुन्दर अलता
हमारे हाथो मे टपका दिया ।
कुछ और पेडो के पीछे से
वन-देवताओ ने
अपने
नये पत्तो जैसे सुन्दर सुकुमार हाथ
मणिबन्ध तक बाहर लाकर
ये आभूषण
स्वय हमारी झोली मे डाल दिये ।

प्रियंवदा (शकुन्तला की ओर देखकर)

भौरी पेड की कोख मे पैदा होकर भी कमल का ही रस पाती है ।

गौतमी

बेटी, वन-देवताओ का यह अनुग्रह इस बात की सूचना है कि

पति के घर मे तू राजलक्ष्मी का उपभोग करेगी ।

शकुन्तला लजाने का अभिनय करती है ।

हारीत

तात कण्व मालिनी मे स्नान कर रहे है । मै जाकर उन्हे वनस्पतियो की इस सेवा का समाचार दे दूँ ।

चला जाता है ।

अनसूया

अब इन आभूषणो से कैसे तुझे सजाएँ ? इनका कुछ अनुभव तो हमे है नही । (सोचते हुए, उसे देखकर) चित्रो मे जिस तरह होता है, उसी तरह तेरे अगो मे ये आभूपण सजा देती है ।

शकुन्तला

तुम लोगो की कुशलता मै जानती हूँ ।

अनसूया और प्रियंवदा उसे आभूषण पहनाती है । स्नान करके आये कण्व का प्रवेश ।

कण्व (सोचते हुए)

शकुन्तला आज चली जाएगी,
यह सोचकर ही
एक अवसाद
हल्के-हल्के मन को छू रहा है,
रोके हुए आँसुओ से
स्वर रुँध-सा गया है,
और आँखे
चिन्ता के कारण
पथरा गयी है ।
मुझे,

वन जीवन विताने पर भी,
आज स्नेह ने
इतना विकल कर दिया है,
तो सोचता हूँ कि
उन्हे,
जो घर-गिरस्ती मे जीते है,
वेटी से बिछुडने का अवसर आने पर,
इस नये दु ख से
कितनी-कितनी पीडा होती होगी ?

घूमता है।

अनसूया-प्रियंवदा

तेरा शृंगार हो चुका, शकुन्तला ! अब तू यह जोडा पहन ले।

शकुन्तला उठकर पहनने का अभिनय करती है।

गौतमी

बेटी, तेरे पिता आ रहे है। आनन्द के आँसुओ से भरी इनकी आँखे ही जैसे तुझे गोद मे ले लेना चाहती है। उठ, और मर्यादा का पालन कर।

शकुन्तला सलज्ज भाव से अभिवादन करती है।

कण्व .

वेटी !

पति से
तुझे वही मान मिले
जो ययाति से शर्मिष्ठा को मिला,
और शर्मिष्ठा की ही तरह
तझ भी

पुरु-जैसा
चक्रवर्त्ती पुत्र प्राप्त हो।

गौतमी :

बेटी, यह आशीर्वाद नही, पिता का वरदान है

कण्व :

यह आग अभी-अभी जलायी गयी है, बेटी ! तू इसकी प्रदक्षिणा कर ले।

सब उसे प्रदक्षिणा कराने के लिए घूमते हैं।

कण्व

बेटी !

पवित्र करे
तुझे
ये यज्ञ-ज्वालाएँ
जिनके स्थान
वेदी के बीच
और आसपास
निर्धारित है,
जिनमे निरन्तर
समिधाएँ पडती है,
और
जिनके सीमाभाग मे
यह दूब बिखरी है !
इन ज्वालाओ मे पडती
आहुतियो की गन्ध
सभी पापो,
सभी क्लेशो

को शान्त कर दे।

शकुन्तला प्रदक्षिणा करती है।

कण्व :

अब प्रस्थान करो, बेटी ! (इधर-उधर दृष्टि डालकर) शार्ङ्गरव और शारद्वत मिश्र कहाँ है ?

शार्ङ्गरव-शारद्वत (प्रवेश करके)

हम यही है, भगवन् !

कण्व :

बच्चो, अपनी बहन को मार्ग दिखाओ।

शार्ङ्गरव-शारद्वत :

इधर से आओ, बहन !

सब घूमते है।

कण्व :

सुनो वन-देवताओ को आवास देनेवाले वृक्षो,
तुम्हे सीचे बिना
जिसने कभी पानी नही पिया,
प्रसाधन मे रुचि रखते हुए भी
जिसने
स्नेहवश
कभी तुम्हारा पत्ता तक नही तोडा,
तुम पर फूल आने पर
जो
सबसे पहले उत्सव मनाने लगती थी,
वही शकुन्तला
आज पति के घर जा रही है—
इसे अनुमति दो,
सबके सब अनुमति दो।

आकाश से :

शिवास्ते सन्तु पन्थान ।

खिली कमलिनियो से भरे सरोवर
तेरे मार्ग मे रमणीय अन्तराल दे,
धूप की चिलचिलाहट को
घने पेडो की छायाएँ रोके रहे,
रास्ते की धूल
तुझे उतनी ही कोमल मिले
जितना कमलो से उठा पराग,
और
ठण्डी हवा
तेरे अनुकूल दिशा मे ही
बहती रहे !

सब आश्चर्य से सुनते है।

शार्ङ्गरव : (कोयल के शब्द की ओर ध्यान दिलाकर)

भगवन् !

यह कोयल का मीठा स्वर
उत्तर है
इन वनस्पतियो की ओरसे,
जोकि
शकुन्तला के
वन-जीवन के बान्धव है—
और इसी स्वर मे वे
इसे अपनी
अनुमति की सूचना दे रहे हैं।

गौतमी :

बेटी, वन-देवताओ का तुझ पर बान्धवो-जैसा ही स्नेह है। इन्होने

तुझे जाने की अनुमति दे दी है, इसके लिए इन्हे प्रणाम कर।

शकुन्तला (प्रणाम करने के बाद थोडा घूमकर, अलग से)

प्रियवदा, आर्यपुत्र से मिलने के लिए मन मे बहुत उत्सुकता है, फिर भी आश्रम को छोडकर जाने मे इतना दु ख हो रहा है कि पैर आगे नही बढ रहे।

प्रियवदा

केवल तुझे ही आश्रम को छोडकर जाने का दु ख नही है, तू यहाँ नही रहेगी, इस बात से देख आश्रम की क्या अवस्था हो रही है—

हरिणी से
मुँह की घास
निगली नही जा रही,
और
मोरनी के पैर
सहसा
नाचने से रुक गये है।
यही नही,
इन लताओ को देख,
जो सूखे पत्तो के बहाने
जैसे
अपनी आँखो से
आँसू गिरा रही है।

शकुन्तला :

पिता, जाते हुए अपनी बहन माधवी लता से भी एक बात कर लूँ।

कण्व

उसके प्रति तेरे अनुराग का मुझे पता है। देख, यही तो है वह दायी ओर।

शकुन्तला (पास जाकर और लता का आलिगन करके)

बहन माधवी, अपनी टहनियो की बॉहो से मुझे आलिगन मे ले ले। आज के बाद मै तुझसे बहुत दूर हो जाऊँगी पिता, इसकी भी देखभाल मेरी ही तरह करना।

कण्व

बेटी,

मेरा पहला सकल्प तेरे लिए था,
पर तूने तो
अपने गुणो से ही
योग्य पति पा लिया।
अब
तेरी ओर से निश्चिन्त हो,
इस आम को वर बनाकर
इन दोनो को मै
विवाह-सूत्र मे बॉध दूँगा।

तो, अब तुम चलो।

शकुन्तला (अनसूया-प्रियवदा के पास आकर)

देखो, मै इसे तुम दोनो के हाथ मे सौपकर जा रही हूँ।

अनसूया-प्रियवदा

और हमे किसके हाथ मे सौपकर जा रही है ?

दोनो की आँखे भर आती है।

कण्व

अनसूया, प्रियवदा, तुम लोग ऐसे रोओ नही। तुम्हे बल्कि शकुन्तला को धीरज बॅधाना चाहिए।

सब लोग घूमते है।

शकुन्तला (देखकर)

पिता, गर्भ-भार से मन्थर होने से पर्णशाला के आस-पास ही

विचरण करनेवाली यह हरिणी जब एक अच्छे-से छौने कोजन्म दे, तो किसी के हाथ यह समाचार मुझे अवश्य भिजवा देना देखो, भूलना नही।

कण्व :

नही भूलूँगा, बेटी !

शकुन्तला (चलने मे बाधा का अभिनय करके)

अरे ! यह कौन पैरो मे लगा बार बार मेरा आँचल खीच रहा है ?

कण्व

बेटी,

हरिण शावक है यह,
जिसका मुँह
घास की सूइयो से छिल जाने पर,
उस घाव को भरने के लिए
तूने दिनो तक
उसे हिगोट के तेल से सीचा था !
तेरी मुट्ठी से धान खा-खाकर पला
यह तेरा ही माना हुआ बेटा है
जो इस समय
तेरे मार्ग से
हटना नही चाहता।

शकुन्तला

क्यो रोक रहा है बेटे, मै तो यह आवास सदा के लिए छोडकर जा रही हूँ। जन्म लेते ही तेरी माँ तुझे छोडकर चल बसी थी—तब मैने तुझे पाला था। अब मै छोडकर जा रही हूँ, तो पिता तेरी पालना करेगे। जा, अब लौट जा।

रोती हुई चल देती है।

कण्व

रो नही, बेटी । धीरज रख और आगे देखकर चल ।

अपलक आँखे
आँसुओ से रुँधी रहने से
आगे की ऊँची-नीची भूमि
तुझे दिखाई नही दे रही,
अब आँसुओ को रोक ले,
क्योकि
रास्ते पर तेरे पैर
सीधे नही पड रहे ।

शार्ङ्गरव-शारद्वत

भगवन्, सुना है बन्धु-जन पानी की सीमा तक ही लडकी को छोडने आते है । यह सामने नदी तट है । अब जो भी सन्देश वहाँ देना हो, वह हमे बताकर आप लौट जायँ ।

कण्व

तो आओ, यहाँ इस अश्वत्थ की छाया मे बैठ जायँ ।

सब लोग बैठने का अभिनय करते है ।

सोच ले कि राजर्षि दुष्यन्त को क्या सन्देश भेजना उचित होगा ।

सोचने लगता है ।

अनसूया

आश्रम मे कोई भी तो चेतन जीव नही है शकुन्तला, जो तेरे वियोग की चेतना से दु खी न हो । देख—

यह चकवा
मुँह मे मृणाल लिए
एकटक तेरी ओर देख रहा है ।
कमलिनी के पत्तो मे लिपटी चकवी
उससे कुछ बात कर रही है,

पर यह उत्तर मे
उससे
कुछ भी कह नही पा रहा।

कण्व

बेटा शाङ्‌र्गरव, शकुन्तला को सामने करके मेरी ओर से राजा से कहना—

शाङ्‌र्गरव

आज्ञा दे क्या कहना होगा ?

कण्व

एक ओर
इसका ध्यान रखते हुए
कि हम लोगो का धन
केवल तपस्या है,
और दूसरी ओर
अपने कुल की ऊँची मर्यादा का,
तथा उसके साथ
इसका भी ध्यान रखते हुए
कि बिना इसके बन्धुओ से अनुमति लिए
तुमने स्वय ही
इसे अपने स्नेह-पास मे बाँधा है,
अब वहाँ इसे
उसी तरह रखना
जैसे तुम्हारी अन्य पत्नियाँ रहती है।
इससे आगे कुछ हो,
तो वह इसका भाग्य है,—
लडकी के सम्बन्धी
अपनी ओर से

इस सम्बन्ध मे
कुछ नही कह सकते ।

शार्ङ्गरव

सन्देश हमने ग्रहण कर लिया है।

कण्व (शकुन्तला की ओर देखकर)

बेटी, मुझे तुझसे भी कुछ कहना है। हम वन मे रहकर भी लोक-व्यवहार से अनभिज्ञ नही है।

शार्ङ्गरव

हाँ, ऐसा कौन-सा विषय है जिसका कि एक प्रतिभाशाली व्यक्ति को ज्ञान न हो ?

कण्व

तो यहाँ से पति के घर जाकर तू—
बडो की सेवा करना
और
राजा के अन्य पत्नियो को
अपनी मित्रो की तरह मानना ।
पति
क्रोध मे आकर
कभी तिरस्कार भी कर दे,
तो तू उसके
प्रतिकूल मत जाना ।
सेवको के साथ
सद्भाव से व्यवहार करना
और
उपभोग की वस्तुओ के प्रति
कभी आग्रह मत दिखाना।
इन्ही गुणो से

एक युवती
गृहिणी कहलाने की अधिकारिणी बनती है , —
जिसका व्यवहार
इसके विपरीत हो,
वह गृहिणी नही,
घर की एक व्याधि है ।

गौतमी, तुम इस सम्बन्ध मे क्या कहती हो ?

गौतमी .

बस एक वधू के लिए यही तो उपदेश होता है। इन बातो को बेटी, सदा याद रखना, कभी भूलना नही ।

कण्व

तो आ बेटी, मुझसे और अपनी सखियो से गले मिल ले ।

शकुन्तला

पिता, ये दोनो भी यही से लौट जाएँगी ?

कण्व

कल को इनका भी कन्यादान करना है, इसलिए इनका वहाँ तेरे साथ जाना उचित नही । तेरे साथ गौतमी जाएगी ।

शकुन्तला (पिता के गले लगकर)

मलय पर्वत से उखडी चन्दन लता की तरह पिता की गोदी से छूट-कर मै वहाँ जिऊँगी कैसे ?

कण्व

इस तरह व्याकुल नही होते, बेटी !

कुलीन पति के यहाँ
गृहिणी के प्रशसनीय पद पर आसीन होकर,
तथा शीघ्र ही
प्राची के गर्भ से सूर्य की तरह
एक कल्याणकारी पुत्र को जन्म देकर,

तू हर समय
उस वैभवशाली घर के
इतने बडे-बडे कार्यो मे व्यस्त रहेगी
कि मुझसे अलग होने की पीडा
तुझे नहीं सताएगी।

शकुन्तला (पिता के पैर छूकर)
प्रणाम करती हूँ, पिता!

कण्व
बेटी, जीवन मे वह सब-कुछ तुझे मिले जो कि तेरे लिए मेरे मन मे है।

शकुन्तला (अनसूया और प्रियवदा के पास आकर)
आओ, तुम दोनो एक साथ मुझसे गले मिलो।

अनसूया-प्रियवदा (वैसा करके)
देख, यदि वह राजर्षि तुझे तुरन्त न पहचान पाए, तो उसे यह अँगूठी दिखा देना जिस पर उसका नाम अङ्कित है।

शकुन्तला
तुम लोगो के इस सन्देश से तो मेरा हृदय काँप गया।

अनसूया-प्रियवदा
डर नही, स्नेह के कारण ही मन मे सब तरह की आशकाएँ उठ आती है।

शार्ङ्गरव
भगवन्, सूर्य सिर पर आ गया है। अब इसे शीघ्र अनुमति दे।

शकुन्तला (फिर पिता के वक्ष से लगकर और आश्रम की ओर देखकर)
पिता, अब इसके बाद तपोवन मे लौटकर कब आ सकूँगी?

कण्व

बहुत दिन
दिशाओ के छोर तक फैली
धरती की

सपत्नी बनी रहकर,
और
दुष्यन्त के
अजेय पुत्र की माँ बनने के बाद,
जब वह राजा
अपना कार्यभार
उसके कन्धो पर रख देगा,
तो तू
पति के साथ ही
मानसिक शान्ति के लिए
पुन
इस आश्रम मे आकर रह सकेगी।

गौतमी

बेटी, तेरे जाने का समय बीता जा रहा है, इसलिए अब पिता को लौट जाने दे। पर यह तो जाने कितनी देर आपको रोके रहेगी, इसलिए आप ही लौट चले।

कण्व

बेटी, मेरा तप-अनुष्ठान रुका है, अब मुझे लौटना होगा।

शकुन्तला

आपकी उत्कण्ठा तो तप-अनुष्ठान के कारण समाप्त हो गयी, पर मेरी उत्कण्ठा अभी उसी तरह बनी है।

कण्व

बेटी, तू तो मुझे जड बनाये दे रही है। (नि श्वास छोडकर)

तेरे हाथ के रोपे
बलि के धान
पर्णशाला के द्वार पर
उगे देखकर,

मेरे मन से शोक
बेटी,
बता, कैसे जा पाएगा !

अब जा   शिवास्ते सन्तु पन्थान ।

गौतमी, शार्ङ्गरव और शारद्वत शकुन्तला के साथ चले जाते है।

अनसूया-प्रियवदा (देर तक विमूढ रहने के बाद करुण स्वर मे)

ओह ! शकुन्तला, तो अब वन पक्तियो की ओट मे चली गयी।

कण्व (नि श्वास छोड़कर)

अनसूया, प्रियवदा, तुम लोगो की साथिन चली गयी। अब शोक के आवेग को दबाकर मेरे पीछे-पीछे चली आओ।

सभी चल देते है।

अनसूया-प्रियंवदा :

पिता, शकुन्तला के चले जाने से तपोवन कितना सूना हो गया है !

कण्व :

स्नेह के कारण ही तुम्हे ऐसा लग रहा है। (सोचते हुए घूमकर) ओह! शकुन्तला को पति के घर भेजकर अब निश्चिन्त हुआ हूँ मै।

लडकी पराया धन है,
और आज
उसे पति के यहाँ भेजकर
मन से एक बोझ उतर गया है।
लगता है
जैसे
किसी की धरोहर
आज उसके हाथो मे
वापस सौप दी हो।

।। चौथा अंक ।।

अंक पाँच

कन्चुकी का प्रवेश।

कंचुकी

ओह ! बुढापे ने क्या दशा कर दी है मेरी !

यह बेत की छडी,
जो मैने
राजा के अन्त पुर-अधिकारी के रूप मे
ग्रहण की थी,
आज,
इतना समय बीत जाने पर,
मेरी बूढी-काँपती टाँगो को
सहारा देकर चलाने का
साधन बन गयी है।

देव अन्त पुर मे चले गए है, फिर भी जाकर उन्हे बताना होगा कि कुछ ऐसा जल्दी का काम आ पडा है जो स्वय उन्ही को निपटाना है। (थोडा चलकर) पर क्या काम है वह ? (सोचकर) हाँ, याद आया। तपोवन से आये कण्व के शिष्य उनसे मिलना चाहते है। सच, कैसी विचित्र दशा है कि—

एक क्षण
अँधेरे मे डूबती-सी,
सहसा

दूसरे ही क्षण
चमक जाती है, —
बुढापे की स्मृति
वैसी ही है
जैसी
बुझते दीये की लौ।

(घूमकर और देखकर) ये रहे देव!

सन्तान की तरह
प्रजा को
उचित कार्यों मे लगाकर,
अब एकान्त मे
उसी तरह अपनी थकान दूर कर रहे है,
जिस तरह गजराज,
गजं-समूह को भरे जगल मे बिखराकर,
स्वय
धूप की तपन दूर करने के लिए
ठण्डी गुफा मे जा बैठता है।

देव धर्म-कार्य मे कभी विलम्ब नही करते, फिर भी मन थोडा शकित है कि कण्व के शिष्यो के आने का समाचार उन्हे तुरन्त देना चाहिए या नही, क्योकि अभी-अभी तो वे धर्मासन से उठकर आये है। पर राजा को विश्राम कहाँ?

सूर्य के घोडे
हर समय जुते रहते है,
रात हो या दिन,
वायु को
हर समय चलते रहना होता है,
और भूमि का भार

शेषनाग
हर समय पीठ पर उठाये रहता है।
यही धर्म राजा का भी है
जो प्रजा से
उसकी आय का छठा भाग
कर के रूप मे ग्रहण करता है।

घूमता है। दुष्यन्त, विदूषक और राजवैभव के अनुसार अपेक्षित परिचारको का प्रवेश।

दुष्यन्त : (जैसे अधिकार से खिन्न)
सब लोगो को अपनी मनोकामना पूरी होने से सुख मिलता है, पर राजा के लिए यह पूर्ति भी दु ख लेकर ही आती है।
नयी प्रतिष्ठा पा कर
केवल एक उत्सुकता शान्त होती है,
परन्तु
प्राप्त की रक्षा का भार
आ पडने से
दु ख और बढता ही है।
अपने हाथ मे लिए छत्र की तरह,
राज्य का अधिकार
उतना कष्ट दूर नही करता
जितना कि बढा देता है।

नेपथ्य से दो वैतालिक
देव की जय हो!

एक वैतालिक
अपने सुखो को भूलकर
लोक-कल्याण के लिए

तुम
रात-दिन कष्ट झेलते हो,
कहा जा सकता है कि
तुम्हारा निर्माण ही इसलिए हुआ है
एक वृक्ष
अपने सिर पर
तीखी धूप इसीलिए झेलता है
कि वह
छाया मे आश्रय लेने वालो का
सन्ताप दूर कर सके।

दूसरा वैतालिक

किसी भी पथ-भ्रष्ट को
उचित दण्ड देना,
विवाद शान्त करके
रक्षा के उपाय करना,
और प्रजा मे
इस तरह
अतुल सम्पत्ति का वितरण करना
कि किसी को किसी से
द्वेष न रहे—
यह तुम्हारा शासन है।
तुम प्रजा के बन्धु हो—
निकटतम और अन्यतम।

दुष्यन्त (सुनकर आश्चर्य के साथ)
इन शब्दो ने शासन-कार्य की सारी थकान दूर करके मन मे एक नया उत्साह भर दिया।

विदूषक (हँसकर)

वाह ! बैल से किसी ने कह दिया है कि तुम गौओ के स्वामी हो तो इतने से ही उसकी थकान दूर हो गई ?

दुष्यन्त (मुसकराकर)

तुम आसन तो लो।

दोनो बैठ जाते है। परिचारक अपने-अपने स्थान पर खड़े हो जाते है। नेपथ्य से वीणा का शब्द सुनाई देता है।

विदूषक (उधर कान देकर)

यह स्वर-सयोग ! मित्र, जरा सगीतशाला की ओर कान देकर सुनो ...कितने शुद्ध ताल-लय मे वीणावादन चल रहा है ! लगता है देवी हसवती वर्णो का अभ्यास कर रही है।

दुष्यन्त

अच्छा, चुप रहो और सुननेदो।

कंचुकी

देव का ध्यान अभी दूसरी ओर है। मै रुककर अवसर की प्रतीक्षा करता हूँ।

एक ओर खड़ा रहता है।

नेपथ्य से (गीत-स्वर)

नये मधु के लोभ से विमोहित हो,
मधुकर,
तब तुमने
किस भाव से आम की मजरी को चूमा था ?
किन्तु आज
केवल कमलिनी के आवास मे सन्तुष्ट रहकर,
उस मजरी को तुमने
सर्वथा भुला ही दिया है ?

दुष्यन्त

ओह ! कैसा भावना का प्रवाह है इस गीत मे !

विदूषक

मित्र, इस गीत का शब्दार्थ भी कुछ समझे हो

दुष्यन्त (मुसकराकर)

शब्दार्थ यह है कि गायिका को केवल एक बार ही हमसे प्रणय मिला है। इस तरह देवी हसवती ने बिना कुछ कहे ही हमे उलाहना दे दिया है। तो माधव्य, तुम जाकर हमारी ओर से देवी हस-वती से कह दो कि उलाहना हमे ठीक से मिल गया है।

विदूषक (उठकर)

जैसी आज्ञा। पर मित्र, है यह दूसरे के हाथ से भालू की चोटी पकडने जैसा काम ! अब मै बेचारा वीतराग ब्राह्मण इसमे मारा जाऊँगा।

दुष्यन्त

अब जाओ भी न ! अपने नागरिक व्यवहार से बेचारी को जैसे-तैसे थोडी सात्वना दे दो।

विदूषक

जाए बिना और चारा भी क्या है ?

चला जाता है।

दुष्यन्त (स्वगत)

किसी प्रियजन का वियोग नही है, फिर भी इस तरह का गीत सुन-कर मन न जाने क्यो इतना उत्कण्ठित हो उठा है ! या फिर—

एक रमणीय दृश्य,
या एक मधुर शब्द,
जो सहसा
एक सुखी व्यक्ति के मन को भी
आन्दोलित कर जाता है,

इसका कारण
क्या यही नही
कि किसी पहले जन्म का परिचय,
जो पहचान से परे रहकर भी
भाव मे समाया रहता है,
मन की किसी अनजान गहराई मे
एकाएक जाग जाता है ?

स्मृतिहीनता का उन्मन भाव उस पर छा जाता है।

कचुकी : (पास आकर)

देव की जय हो ! हिमालय की घाटी के वन से कुछ तपस्वी ऋषि कण्व का सन्देश लेकर आये है। दो-एक स्त्रियाँ भी उनके साथ है। यह जानकर अब आप जैसा आदेश दे, वैसा किया जाय।

दुष्यन्त : (आश्चर्य के साथ)

कण्व का सन्देश लेकर तपस्वी आये है, और स्त्रियाँ उनके साथ है ?

कंचुकी :

जी हाँ !

दुष्यन्त :

तो जाकर उपाध्याय सोमरात से मेरी ओर से कहो कि वेदोक्त विधि से तपस्वियो का सत्कार करके वे स्वय उन्हे साथ ले आएँ। मै भी तपस्वियो के दर्शन के लिए अनुकूल स्थान पर चलकर उनकी प्रतीक्षा करता हूँ।

कचुकी .

जेसी देव की आज्ञा !

चला जाता है।

दुष्यन्त : (उठकर)

वेत्रवती, यज्ञभवन का मार्ग दिखाओ।

प्रतीहारी

इधर से आएँ, देव ! (घूमकर) यह रहा यज्ञभवन का चबूतरा जिसे अभी-अभी धोकर निखारा गया है। यही होम धेनु का आवास भी है। देव ऊपर चले।

दुष्यन्त : (ऊपर पहुँचकर प्रतीहारी के कन्धे का सहारा लिये हुए)

वेत्रवती, आचार्य कण्व ने किस उद्देश्य से इन तपस्वियो को मेरे पास भेजा होगा ?

क्या किसी ने
व्रतधारी तपस्वियो के
तापस धर्म को
बाधाओ से दूषित किया है ?
या
तपोवन मे विचरण करते
पशु-पक्षियो के प्रति
किसी से दुर्व्यवहार हुआ है ?
या फिर कही ऐसा तो नही
कि मेरी शक्ति से अपरिचित
किसी दुराग्रही ने
लताओ के फूल-पत्ते
नष्ट करने का प्रयत्न किया है ?
मन मे कई तरह के तर्क उठने,
और कोई भी एक
निश्चय न कर पाने के कारण
मेरा मन
चिन्ता से व्याकुल हो रहा है।

प्रतीहारी :

आपकी भुजाओ से रक्षित तपोवन मे ऐसी सम्भावना ही कहाँ है?

मुझे तो लगता है कि आपके सद्व्यवहार से प्रसन्न होकर ये ऋषि आपका अभिनन्दन करने आये है।

शकुन्तला को साथ लिये गौतमी, शार्ङ्गरव और शारद्वत का प्रवेश। पुरोहित और कंचुकी इनके आगे-आगे है।

कंचुकी :

इधर से आएँ आप लोग।

शार्ङ्गरव :

मित्र शारद्वत,

बहुत प्रभाव है राजा का,
और यह कभी
मर्यादा का उल्लघन नही करता,
चारो वर्णों मे से
कोई निकृष्ट व्यक्ति भी
इसके राज्य मे कभी पथभ्रष्ट नही होता,
फिर भी
निर्जन मे रहने के अभ्यास के कारण
यहाँ भीड मे आकर
मन को ऐसा लगता है
जैसे
बिना जाने सहसा
किसी आग से घिरे घर मे
चले आये हो।

शारद्वत :

नगर मे आकर तुम्हारा इस तरह अनुभव करना अस्वाभाविक नही।

इन लोगो के सुख-सयोग के बीच
अपने को देखकर
ऐसा आभास होता है
जैसे एक नहाया व्यक्ति
तेल से चिकने शरीर को,
एक पवित्र व्यक्ति
अपवित्र देह को,
एक जागा हुआ व्यक्ति
सो रहे कलेवर को,
और
एक स्वतन्त्र व्यक्ति
बँधे हुए गात्रो को
देख रहा हो ।

पुरोहित

इसीलिए तो आप लोग महान् है ।

शकुन्तला (अपशकुन का अभिनय करके)

ओह ! मेरी दायी आँख क्यो फडक रही है ?

गौतमी

अमगल शान्त हो, बेटी ! तुझे सब तरह का सुख प्राप्त हो ।

सब घूमते है ।

पुरोहित (दुष्यन्त की ओर सकेत करके)

तापसगण, ये रहे वर्णाश्रमो के रक्षक हमारे राजा । आसन छोड-कर ये आपकी प्रतीक्षा मे खडे है।

शार्ङ्गरव

इनका यह व्यवहार प्रशसनीय है, फिर भी हम लोग इस सबके प्रति उदासीन है ।

फल आने पर

पेडो का झुक जाना,
नये जल के भार से
बादलो का दूर-दूर तक घिर आना,
और
विशाल वैभव पाकर
सत्पुरुप का विनम्र हो उठना,
स्वाभाविक धर्म है,
और यही
परोपकार की मर्यादा है।

प्रतीहारी

देव, ऋपि लोग देखने मे काफी प्रसन्न जान पडते है।

दुष्यन्त (शकुन्तला को देखकर)

अरे!

यह कौन है इनके साथ
जिसके शरीर का लावण्य
घूँघट मे छिपा रहने से
बाहर झलक नही पाता?
इन तापसो मे घिरी
यह ऐसे लगती है
जैसे
पीले पत्तो के बीच
एक नयी कोपल।

प्रतीहारी

स्वामी, इसे देखकर मन मे इतनी उत्सुकता जाग रही है कि मेरी तो विचार-शक्ति ही जैसे लुप्त हो गयी है। आकृति नि सन्देह ऐसी है कि बस देखते रहने को ही मन करता है।

दुष्यन्त

ठीक है, पर परायी स्त्री की ओर देखना उचित नही।

शकुन्तला (वक्ष पर हाथ रखकर, स्वगत)

हृदय, क्यो इतना कॉपते हो ? आर्यपुत्र की उस भावना का स्मरण करके तुम्हे धीरज रखना चाहिए।

पुरोहित (आगे आकर)

स्वस्ति देवाय। तपस्वियो की विधिपूर्वक अर्चना करके मै इन्हे साथ ले आया हूॅ। ये आचार्य का कुछ सन्देश लाये है जो आप इनसे सुन सकते है।

दुष्यन्त

मै ध्यान से सुन रहा हूॅ।

शार्ङ्गरव-शारद्वत (हाथ उठाकर)

तुम्हारी विजय हो, राजा!

दुष्यन्त

मै आप सबको अभिवादन करता हूॅ।

शार्ङ्गरव-शारद्वत

स्वस्ति देवाय।

दुष्यन्त

वहॉ तपस्या मे कोई बाधा तो नही ?

शार्ङ्गरव-शारद्वत

तुम सदाचार के रक्षक हो,
तो फिर
धर्म-कार्यो मे
बाधा कैसे पड सकती है ?
सूर्य का आलोक जहॉ फैला हो,
वहॉ
अॅधेरा कैसे टिक सकता है ?

दुष्यन्त (स्वगत)

यह सुनकर मेरा राजा कहलाना सार्थक हो गया। (प्रकट) आचार्य कण्व सकुशल तो है ?

शार्ङ्गरव

उन-जैसे सिद्ध व्यक्ति की कुशल उनके अपने हाथ मे रहती है। उन्होने आपका कुशल समाचार पूछा है और कहा है.

दुष्यन्त

क्या आदेश दिया है उन्होने ?

शार्ङ्गरव

. .कि पारस्परिक प्रतिज्ञा के आधार पर आपने जो हमारी बेटी से विवाह किया, इसके लिए हमने स्नेहपूर्वक अपनी अनुमति दे दी है।

हमारी धारणा है
कि आप
सत्पुरुषो के शिरोमणि है,
और शकुन्तला
जो कुछ भी शुभ है
उसकी
शरीरधारिणी क्रिया।
आप दोनो को
वर और वधू के रूप मे मिलाकर
प्रजापति ने
एक ऐसा कार्य किया है,
जिसकी कि कभी भी
निन्दा नही होगी।

अब यह एक जीव को जन्म देने जा रही है, इसलिए साथ रहकर धर्माचरण के लिए इसे यही पास रखे।

गौतमी :

भद्रमुख, मै भी कुछ कहना चाहती हूँ पर मेरे बोलने का शायद अवसर नही है।

दुष्यन्त

आप कहे, क्या कहना चाहती है ?

गौतमी :

न इसने अपने गुरुजनो से अनुमति ली,
और न ही
तुमने अपने बन्धुओ से इस विषय मे कुछ पूछा।
एक और एक के बीच हुई इस बात को लेकर
तुम दोनो मे से किसी से भी
कोई कहे तो क्या कहे ?

शकुन्तला : (स्वगत)

जाने आर्यपु अब उत्तर मे क्या कहेगे !

दुष्यन्त (सब सुनकर आशकित भाव से)

अरे ! यह आप लोगो ने कैसी कहानी शुरू कर दी !

शकुन्तला : (स्वगत)

ओह! कैसे आक्षेप और तिरस्कारपूर्ण शब्द है ये !

शार्ङ्गरव

क्या कहा आपने—कहानी शुरू कर दी ? आप समझते है कि लोक-व्यवहार की बाते केवल आप ही जानते हे ?

विवाहिता नारी
सतीत्व का पालन करती हुई भी
यदि बहुत दिनो तक
अपने पितृकुल मे रहती है,
तो उसके विषय मे
तरह-तरह की आशकाएँ उठने लगती है।

इसलिए,
वह पति को प्रिय लगे या न लगे,
उसके सम्बन्धी यही चाहेगे
कि वह
अपने स्वामी के पास,
उसके घर मे ही रहे।

दुष्यन्त

आप कहना चाहते है कि मै इस तपस्विनी से विवाह कर चुका हूँ

शकुन्तला · (विषादपूर्वक, स्वगत)

ले हृदय, अब तेरी आशका तेरे सामने है !

शार्ङ्गरव :

क्या यह एक राजा के लिए उचित है कि अपने किये का पश्चाताप उसे धर्म-मार्ग से डिगा दे ?

दुष्यन्त .

पर ऐसी अशुभ कल्पना आप कर किस आधार पर रहे है ?

शार्ङ्गरव · (क्रोध के साथ)

ऐश्वर्य का उन्माद
प्राय
ऐसे विकार
मन मे उत्पन्न कर ही देता है।

दुष्यन्त :

आप बहुत आक्षेप कर रहे है मेरे ऊपर !

गौतमी : (शकुन्तला से)

बेटी, अब पल-भर के लिए लज्जा छोड और मुझे अपना घूँघट हटा लेने दे। इससे स्वामी तुझे पहचान जाएँगे।

उसका घूँघट हटा देती है।

दुष्यन्त : (शकुन्तला को देखकर, स्वगत)

यह अनिन्द्य रूप
और इतना सुलभ ?
पर पहले इसका परिग्रह किया है या नही,
इस सशय मे पडकर
मन से
न इसे अपनाते बनता है
न अस्वीकार करते !
स्थिति एक भौरे की-सी है
जिमे कमलकोष का आश्रय तो मिले,
पर साथ उसमे
तुषार की बूँदे लिपटी हो !

विचारमग्न-सा हो रहता है।

प्रतीहारी (स्वगत)

स्वामी को धर्म का कितना विचार है ! अन्यथा अनायास मिल रहे ऐसे स्त्री-रत्न को पाकर कौन पल-भर के लिए भी सोचता हे ?

शार्ङ्गरव :

क्यो राजा, चुप क्यो हो रहे ?

दुष्यन्त

ऐसा है तापसगण, कि मुझे बहुत सोचकर भी याद नही आ रहा कि मैने कब इसे पत्नी के रूप मे अपनाया है। और अब इसके गर्भ-लक्षणो को देखते हुए भी मै इसे स्वीकार कर लूँ, यह क्षत्रियोचित कार्य नही।

शकुन्तला : (स्वगत)

ओह ! इन्हे विवाह मे ही सन्देह है ! इससे तो दूर तक फैल आयी मन की आशा-लता सर्वथा टूट गयी !

शार्ङ्गरव :

चोरी किया धन,

धन का स्वामी
जैसे चोर को ही सौप दे,
कुछ वैसे ही
महर्षि ने
तुम्हारे बलात्कार से दूषित
अपनी बेटी को
तुम्हे सौपने की अनुमति दी है।
उस अनुमति की तुम
इस तरह
अवमानना नही कर सकते।

शारद्वत

तुम ठहरो, शार्ङ्गरव ! देखो शकुन्तला, हमे जो कहना था हमने कह दिया है। उत्तर मे जो ये कह रहे है, वह तुमने सुन लिया है। अब इन्हे विश्वास दिलाने के लिए तुम्ही को जो कुछ कहना हो, कहो।

शकुन्तला : (स्वगत)

तब इनका कैसा अनुराग था और आज इनकी ऐसी बाते ! ऐसे मे याद दिलाने से भी क्या होगा ? पर अपने पर से तो कलक मुझे मिटाना ही चाहिए, इसलिए कुछ कह देती हूँ। (प्रकट) आर्यपुत्र... (फिर बात को बीच मे ही रोककर) पर यह सम्बोधन इस समय सशयास्पद होगा। पौरव, तब आश्रम मे अपनी सद्भावपूर्ण बातो से मेरे हृदय को भुलाकर और शपथ के साथ तरह-तरह के आश्वासन देकर आज इस तरह के रूखे शब्दो से मुझे तिरस्कृत करना क्या आपको शोभा देता है ?

दुष्यन्त: (कानो पर हाथ रखकर)

ऐसी बात सुनना भी पाप है।

तुम चाहती हो
कि इन बातो मे

मेरे कुल को कलकित करो
और मेरा नाम भी कीचड मे घसीट लो ?
गदली नदी
अपना तट तोडकर
निर्मल जलधार को गदला देती है
और
किनारे के पेड को गिरा देती है ।

अच्छा, यदि सचमुच आप मुझे परायी स्त्री समझकर ऐसा कह रहे है, तो मै एक स्मृति-चिह्न दिखाकर आपकी आशका दूर कर देती हूँ ।

दुष्यन्त

बहुत सगत बात है यह ।

शकुन्तला : (अँगुली मे अँगूठी के स्थान को छूकर)

ओह ! अँगुली से अँगूठी कहाँ गिर गयी ?

गौतमी :

लगता है शक्रावतार मे शचो-तीर्थजल की वन्दना करते समय वह तेरी अँगुली से गिर गयी है।

दुष्यन्त (मुसकराकर)

इसी को तो स्त्रियो की सूझ-बूझ कहा जाता है !

शकुन्तला :

यह तो भाग्य ने अपनी प्रभुता दिखायी है । मै आपको और याद दिलाती हूँ।

दुष्यन्त :

अब तो हर बात सुननी ही होगी ।

शकुन्तला :

वह एक दिन की बात है न .जब कमलिनी-पत्र के दोने मे भरा पानी आप अपने हाथ मे लिये थे .

दुष्यन्त

हम सुन रहे है।

शकुन्तला :

तभी दीर्घापाग नामक मृगशावक, जिसे मै अपने बच्चे की तरह मानती थी, हमारे पास चला आया था। वह पहले पानी पी ले, यह सोचकर आपने स्नेह से उसे पास बुलाना चाहा था। पर वह आपसे परिचित नही था, इसलिए वह पानी पीने आपके पास नही आया। फिर वही पानी मैने हाथ मे ले लिया तो वह पीने के लिए मचलने लगा। तब आपने हँसकर कहा था कि सब लोग अपनो पर ही विश्वास करते है—तुम दोनो ही वनजीव हो न!

दुष्यन्त :

काम साधने के लिए ऐसी मीठी-मीठी और झूठी बाते कहकर केवल विषयासक्त व्यक्तियो को ही अपनी ओर खीचा जा सकता है।

गौतमी :

देखिए, आप ऐसा नही कह सकते। तपोवन मे पली यह लडकी छल-कपट की बात तो बिलकुल जानती भी नही।

दुष्यन्त :

बूढी तपस्विनी!

बिना किसी के सिखाये
पशु-पक्षियो मे भी
स्त्री
अपने अन्दर से ही चतुराई सीख जाती है,
जिसे साथ
मनुष्य की बुद्धि भी मिली हो,
उसकी तो बात ही क्या!
कोयल को देखो,

जब तक
उसके बच्चे उडना नही सीखते,
तब तक वह उनका पोषण
दूसरे पक्षी से कराती है ।

शकुन्तला : (रोषपूर्वक)

अनार्य, जैसा तुम्हारा अपना हृदय है, वैसा ही तुम हर एक का समझते हो ? घास-फूस से ढँके कुएँ की तरह तुम धर्म के बाने मे अपनी वास्तविकता छिपाये हो। दूसरा कौन तुम्हारा अनुकरण कर सकता है ?

दुष्यन्त : (स्वगत)

वन मे रहने के कारण इसके क्रोध मे विलास का स्पर्श नही है।

आँखे लाल है,
किन्तु तिरछी होकर नही देखती ,
वाणी मे कठोरता है,
पर किसी तरह का उतार-चढाव नही ,
नीचे का होठ
पूरा काँप रहा है,
जैसे कि वह शीत से पीडित हो,
और झुकी-झुकी भौहे
एक-साथ टेढी होकर
जैसे एक ही स्थान पर स्तब्ध हो गयी है।

फिर मुझे सशय मे देखकर इसे जो क्रोध आ रहा है, उसमे किसी तरह का कपट भी नही लगता।

इसे लगता है
कि मै कठोर-हृदय व्यक्ति हूँ
जो इसे भूल गया हूँ,
और इसके साथ अपना एकान्त-प्रणय भी

स्वीकार नही कर रहा।
इससे इसकी आँखे लाल हो उठी है,
और भौहे
तिरछी होकर ऐसे लग रही है
जैसे क्रोध मे आकर
इसने काम देव का धनुष
एक झटके से तोड दिया हो।

(प्रकट) देखो भद्रे, दुष्यन्त के चरित्र को सब लोग जानते है।
उसकी तो प्रजा मे भी कोई ऐसा कार्य नही कर सकता।

शकुन्तला :

धर्म क्या है
और उसका पालन कैसे होता है,
इसके ज्ञाता और नियन्ता
आप ही लोग तो है।
लज्जा से झुकी रहती
स्त्रियाँ तो
इस सम्बन्ध मे
कुछ भी नही जानती।

तो ठीक है, यह एक स्वेच्छाचारिणी वेश्या है जो आपके सामने आ खडी हुई है।

गौतमी :

बेटी, तू पुरुवश का विश्वास करके एक ऐसे व्यक्ति के हाथ मे जा पडी है जिसके मुँह मे शहद है और हृदय मे विष।

शकुन्तला पल्ले से मुँह ढाँपकर रोने लगती है।

शार्ङ्गरव

निर्बाध स्वेच्छाचार इसी तरह तो मन को सालता है।

एकान्त मिलन से पहले
अच्छी तरह व्यक्ति को जानना
आवश्यक है।
जिसके हृदय का पता न हो,
ऐसे व्यक्ति से किया स्नेह
बाद मे
शत्रुता का रूप ले लेता है।

दुष्यन्त

सुनिए तो! हमसे कोई अपराध नही हुआ। आप इनकी बात पर विश्वास करके हम पर निराधार आक्षेप कर रहे है।

शार्ङ्गरव (आवेश के साथ)

सुना आपने यह हीन उत्तर!
जिसने जीवन-भर
कभी सीखा ही नही
कि छल-कपट क्या है,
उसकी बात विश्वसनीय नही,
और जो एक विद्या समझकर
दूसरो को ठगने का अभ्यास करते है,
उनकी बात पर
विश्वास करना आवश्यक है!

दुष्यन्त :

अच्छा मान लिया कि हम ऐसे है और केवल आप ही लोग सत्यवादी है। पर इस बेचारी को धोखा देकर हमे मिलेगा क्या?

शार्ङ्गरव

अध पतन होगा तुम्हारा।

दुष्यन्त :

पौरवो मे से किसी का अध पतन हो, यह बात विश्वास करने की

नही ।

शार्ङ्गरव

अधिक कहने-सुनने मे कुछ नही रखा है, राजा! हमने गुरु के आदेश का पालन कर दिया है, और अब लौटकर जा रहे है।

यह तुम्हारी पत्नी है,
तुम इसे रखो या छोड दो,
यह तुम्हारी इच्छा पर है।
एक पति के रूप मे
तुम्हारा
अपनी पत्नी पर
सब तरह का अधिकार है।

चलो गौतमी, तुम आगे-आगे चलो।

वे तीनो चल देते है।

शकुन्तला

इस धूर्त ने मुझे धोखा दिया, और अब तुम लोग भी मुझे छोडकर जा रहे हो?

गौतमी (रुककर और पीछे की ओर देखकर)

बेटा शार्ङ्गरव, शकुन्तला बिलखती हुई हमारे पीछे-पीछे आ रही है। पति ने निष्ठुर होकर उसका तिरस्कार कर दिया, अब यह बेचारी यहाँ क्या करेगी?

शार्ङ्गरव (पीछे मुडकर क्रोध के साथ)

अपराधिनी, यह अब तेरी कैसी स्वच्छन्दता है?

शकुन्तला भय से काँपने लगती है।

तू यह जान ले शकुन्तला कि—

यदि राजा की बात सच है
तो तेरे-जैसी कुल-कलकिनी का क्या होगा,
हम नही जानते,

और यदि तू समझती है
कि तेरा आचरण पवित्र है
तो पति के घर मे
दासी बनकर रहना भी
तुझे स्वीकार होना चाहिए।
इसलिए तू यही रुकी रह। हम लोग जा रहे है।

दुष्यन्त :

इस बेचारी को क्यो कोस रहे हो, तपस्वी ?
चॉद
कुमुदिनी को
और सूर्य
कमल को ही
खिला सकता है।
जिन्हे अपने पर सयम है,
वे परायी स्त्री के स्पर्श से
सदा विमुख रहते है।

शार्ङ्गरव :

राजा, यदि मान लिया जाय कि मानसिक सकुलता के कारण तुम इस बात को भूल गये हो, तो भी क्या पत्नी का परित्याग करने मे तुम्हे पाप की आशका नही है ?

दुष्यन्त (पुरोहित से)

अच्छा, आप बताएँ कि इसमे उचित और अनुचित का निर्णय कैसे हो ?
मेरा मन सकुल है
या यह झूठ कहती है,
इस सशय मे
एक ओर पत्नी-परित्याग का

और दूसरी ओर
परायी स्त्री के स्पर्श का
दोष सिर पर आ सकता है।

पुरोहित

तो ऐसा किया जाय

दुष्यन्त :

हाँ, बताएँ आपका क्या आदेश है ?

पुरोहित :

. कि प्रसव होने तक यह मेरे घर मे रहे।

दुष्यन्त

ऐसा क्यो ?

पुरोहित :

कुछ अच्छे ज्योतिषी पहले ही आपको बता चुके है कि आपके चक्र-वर्त्ती पुत्र होगा। यदि ऋषि का नाती उन लक्षणो से युक्त होगा तो आप आदरपूर्वक इसे अन्त पुर मे रख लीजिएगा। न हुआ, तो इसका अपने पिता के यहाँ लौट जाना निश्चित है ही।

दुष्यन्त :

गुरु जैसा ठीक समझे।

पुरोहित : (उठकर)

बेटी, इधर मेरे पीछे-पीछे आओ।

शकुन्तला रोती हुई पुरोहित, गौतमी और तपस्वियों के साथ चली जाती है। दुष्यन्त, शाप के कारण स्मृतिहीन, शकुन्तला के विषय में सोचता रहता है।

नेपथ्य से :

आश्चर्य ! आश्चर्य !

दुष्यन्त : (सुनकर)

यह क्या हुआ है ?

पुरोहित : (आकर विस्मित भाव से)

देव, एक बहुत ही विचित्र बात हुई है।

दुष्यन्त :

क्या बात ?

पुरोहित :

जब कण्व के शिष्य चले गये तो —

अपने भाग्य को कोसती
वह बाला
बाँहे उठाकर
ज्योही रोने लगी

दुष्यन्त :

क्या हुआ तब ?

पुरोहित :

. त्योही
आकाश से उतरी
एक नारी-रूप अप्सरा-सी ज्योति,
उसे गोदी मे लेकर
हमारे सामने से
तिरोहित हो गयी।

सभी विस्मित हो रहते है।

दुष्यन्त

आचार्य, हमने तो पहले ही उसे अस्वीकार कर दिया था, अब व्यर्थ मे कुछ भी सोचने से क्या लाभ ? आप जाकर विश्राम करे।

पुरोहित :

विजयी रहो। **चला जाता है।**

दुष्यन्त

वेत्रवती, मन व्याकुल है। शयन-गृह का मार्ग दिखाओ।

प्रतीहारी :

इधर से आये, देव!

दुष्यन्त : (घूमकर, स्वगत)

मुनि-कन्या का तिरस्कार कर दिया,
कभी उसे
पत्नी-रूप मे स्वीकार किया था,
यह स्मरण नही आता,
फिर भी
हृदय मे एक गहरी पीडा है,
और न जाने क्यो
कही विश्वास-सा होता है
कि उसने जो कहा
वही सच था।

॥ अंक पाँच ॥

अंकावतार

नागरक श्याल और पीछे की ओर हाथ बाँधकर एक पुरुष को साथ लिये दो रक्षक आते हैं।

रक्षक . (पुरुष को मारते हुए)

बोल रे कुम्भिलक, यह बडी-बडी चमकती मणियो वाली राजा

की अँगूठी, जिस पर उनका नाम भी खुदा है, तूने कहाँ से ली ?

पुरुष : (भय का अभिनय करता)

दया करो भाव-मिश्र, दया करो। ऐसा बुरा काम मै कभी नही करता।

एक रक्षक :

नही, तू तो पूज्य ब्राह्मण है न, जिसे राजा ने यह दान मे दे दी है!

पुरुष :

सुनिये तो। मै शक्रावतार का रहनेवाला धीवर हूँ।

दूसरा रक्षक :

अरे पाटच्चर, हम क्या तुझसे तेरी बस्ती का नाम और तेरा काम-काज पूछ रहे है ?

नागरक श्याल :

सूचक, इसे पूरी बात क्रम से बताने दो। बीच मे बाधा मत डालो।

दोनों रक्षक :

जैसी बहनोई की आज्ञा। बोल रे अब!

धीवर :

मेरे पास जाल, कँटिया और मछली पकडने का सब सामान है। उसी से मै पेट पालता हूँ।

नागरक श्याल : (हँसकर)

कितनी पवित्र आजीविका है!

धीवर :

स्वामी, ऐसा न कहे।

कोई काम निन्दित है,
इसीलिए
जो उस काम को करता आया हो,
वह उसे छोड नही देता।

बडे-बडे कोमल-हृदय ब्राह्मण भी
यज्ञ की वेदी पर
पशु-हिसा का निष्ठुर काम
अपना धर्म समझकर करते है।

नागरक श्याल .

अब तू आगे बता क्या हुआ ?

धीवर :

एक दिन मैने एक रोहित मछली पकडी। उसे काटकर टुकडे किये। पेट मे देखा, तो वहाँ यह बडे-बडे रत्नो वाली अँगूठी चमकती दिखायी दी। यहाँ उसे बेचने के लिए दिखाने लाया, तो इन लोगो ने पकड लिया। बस इतनी ही इसकी कहानी है। अब आप मुझे मार ले, चाहे कूट ले।

नागरक श्याल (अँगूठी को सूँघकर)

जालुक, यह अँगूठी मछली के पेट मे रही है, इसमे सन्देह नही। इसमे से मास की गन्ध आ रही है। अब इस आदमी ने जो कहानी बतायी है, इसकी जाँच करनी होगी। इसके लिए आओ, राजभवन चले।

दोनों रक्षक : (धीवर से)

चल रे गिरहकट, चल।

सब घूमते है।

नागरक श्याल

सूचक, तुम दोनो यहाँ ड्योढी के द्वार पर सावधान होकर ठहरो और मेरी प्रतीक्षा करो। मै अभी राजभवन के अन्दर होकर आता हूँ।

दोनों रक्षक

हाँ बहनोई, आप अन्दर जाकर स्वामी की कृपा प्राप्त करे।

नागरक श्याल घूमकर चला जाता है।

सूचक :

जालुक, बहनोई ने बहुत देर कर दी ।

जालुक :

भई, राजाओ के पास अवसर देखकर जाना पडता है ।

सूचक :

और मेरे दोनो हाथ इस गिरहकट की हत्या के लिए अकुला रहे है ।

धीवर :

भाव, आप बिना कारण हत्यारे बने, यह ठीक नही ।

जालुक : (देखकर)

ये रहे हमारे स्वामी । राजा का आज्ञापत्र लेकर आ रहे है । अब या तो यह जाकर अपने घर के लोगो का मुँह देखेगा, या गीध और सियार इसका भोजन करेगे ।

नागरक श्याल : (आकर)

जल्दी से इस ..

धीवर : (आधी बात सुनकर ही)

हाय, मै मारा गया !

नागरक श्याल :

जालजीवी को छोड दो । स्वामी ने कहा है कि अँगूठी मिलने का जो वृत्तान्त इसने सुनाया है, वह ठीक है ।

सूचक :

जैसी बहनोई की आज्ञा । यह तो यम के घर से जीता लौट आया ।

धीवर का बन्धन खोलता है ।

धीवर :

स्वामी, मेरे प्राण आपने खरीद लिये है ।

पैरो पर गिरता है ।

नागरक श्याल :

उठ, उठ, स्वामी ने तुझे अँगूठी के मूल्य का यह पारितोषिक दिया है। चल, ले-ले इसे।

एक कगन उसे देता है।

धीवर : (कंगन लेकर और प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक) बहुत कृपा है आपकी।

जालुक

राजा ने तो इस पर ऐसे कृपा की है जैसे किसी को सूली से उतार कर हाथी के कन्धे पर बिठा दिया जाय !

सूचक :

बहनोई, इस पारितोषिक से तो लगता है कि उस अँगूठी मे बडे-बडे मूल्यवान रत्न लगे होगे, जिससे स्वामी को वह बहुत प्रिय होगी।

नागरक श्याल :

नही, मूल्यवान रत्नो के कारण वह स्वामी को प्रिय नही है। मुझे कुछ और ही कारण लगता है।

दोनो रक्षक :

क्या कारण लगता है ?

नागरक श्याल

लगता है कि अँगूठी को देखकर स्वामी को किसी प्रिय व्यक्ति की याद हो आयी है। वे स्वभाव से गम्भीर है, फिर भी उसे देखते ही सहसा अव्यवस्थित हो उठे है।

सूचक

तो बहनोई, स्वामी को आप एक साथ प्रसन्न और चिन्तित कर आये है।

जालुक

मै तो कहता हूँ कि इस मछलीमार के कारण ही

भौहे तिरछी करके धीवर की ओर देखता है।

धीवर :

भट्टारक, इस पारितोषिक का आधा मूल्य आपके मदिरापान के लिए होना चाहिए।

जालुक :

अरे धीवर भाई! अब तुम हमारे बहुत अच्छे और प्यारे मित्र बन गए! मित्रता का आरम्भ मदिरा की साक्षी मे ही होना चाहिए। आओ, यहाँ से सीधे कलाल के यहाँ चलते है।

सब चले जाते हैं।

अंकावतार

अंक छः

विमान मे बैठी मिश्रकेशी का प्रवेश।

मिश्रकेशी

अप्सराओ ने जिन-जिन कार्यों के लिए सन्देश दिये थे, वे सब तो मैने पूरे कर लिये। अब स्वामी कुबेर के स्नान का समय होने से पहले यहाँ से राजर्षि दुष्यन्त का समाचार भी जान लूँ। मेनका के सम्बन्ध से शकुन्तला अब मेरे लिए अपने ही शरीर की तरह है और लडकी का ध्यान रखते हुए मेनका ने यहाँ के समाचार जानने को कहा भी था। (चारो ओर देखकर) क्या बात है—उत्सव का दिन होने पर भी राजभवन मे उसकी कोई हलचल दिखायी नही दे रही। यूँ तो मै समाधि मे ही सब-कुछ जान सकती हूँ, परन्तु मेनका चाहती थी कि मै सब-कुछ प्रत्यक्ष देखकर आऊँ, इसलिए उसके अनुरोध की रक्षा मुझे करनी है। तो तिरस्करिणी विद्या से अपने को अदृश्य करके यहाँ उद्यान-रक्षको के समीप खडी हो रहती हूँ। यही से मुझे सब पता चल जाएगा।

विमान से उतरने का अभिनय करके एक ओर खड़ी हो जाती है। तभी आम की मंजरियो को देखती हुई एक चेटी और उसके पीछे-पीछे दूसरी चेटी आती है।

पहली चेटी :

कितना खिला हुआ है वसन्त !

आम की मजरियाँ,

जिनके वृन्त

हरे और हल्के ताँबई रग के है,

और जो

इस अवसर के मगल-उपकरणो की तरह है,

इस समय ऐसी लग रही है

जैसे

नये वसन्त का

ये पहला उच्छ्वास हो।

दूसरी चेटी

तू अकेली मन-ही-मन क्या बात कर रही है, परभृतिका ?

परभृतिका :

तू जानती नही, मधुकरिका, कि आम की कलियो को देखकर परभृतिका पागल हो उठती है ?

मधुकरिका : (जल्दी से पास आकर सहर्ष)

तो वसन्त खिल आया ?

परभृतिका

हाँ, तू मधुकरिका है, तेरे लिए भी तो यह उन्मत्त होकर गीत गाने का समय है।

मधुकरिका :

तू मुझे सहारा दे, तो मै पजो के बल खडी होकर आम की एक मजरी तोड लूँ। उससे कामदेव की अर्चना करूँगी।

परभृतिका .

ऐसा है, तो अर्चना का आधा फल मेरे लिए।

मधुकरिका

वह तो बिना कहे ही तुझे मिल जाता। प्रजापति ने एक शरीर के दो भाग करके ही तो हमे बनाया है। (परभृतिका के सहारे से आम की मजरी तोडकर) अभी ठीक से खिली नही यह मजरी, फिर भी वृन्त से टूटते ही देख इसने कैसी सुगन्ध फैला दी ! जय हो भगवान् कामदेव की। (अजलिबाँधकर)

जाओ आम्रमुकुल,
मेरे हाथ से छूटकर
तुम
धनुष चढाये कामदेव के
पाँच बाणो मे से एक बाण बन जाओ,
और पथिको के वियोग मे व्याकुल
प्रतीक्षा करती नवयुवतियो को
अपना लक्ष्य बनाओ।

कचुकी (बिना पट-परिवर्तन के प्रवेश करके क्रोध के साथ)

यह तुम क्या कर रही हो, नासमझ लडकी ? देव ने वसन्तोत्सव रोक दिया है, फिर भी तुम आम की मजरियाँ तोड रही हो ?

परभृतिका-मधुकरिका (भयभीत होकर)

क्षमा करे, आर्य ! हमे इसका पता नही था।

कचुकी

तुमने सुना नही कि देव की आज्ञा का पालन स्वय वक्षो और उन पर आश्रित पक्षियो तक ने किया है ?

आम की कलियाँ
बहुत दिनो से निकली है,
फिर भी अभी तक
उन पर पराग नही आया,
कुरुबक की कोपले

कब से फूटी है,
पर अभी तक वे
वैसे कोपले ही बनी है,
शिशिर बीत गया है,
फिर भी युवा कोयलो का सगीत
उनके कण्ठो मे ही रुँधा है,
और लगता है
कि स्वय काम भी
अपने तूणीर से आधा निकला बाण
जहाँ-का-तहाँ रोके
चकित-सा खडा देख रहा है।

मिश्रकेशी

राजर्षि का बहुत प्रभाव है, इसमे सन्देह नही।

परभृतिका

आर्य, कुछ ही दिन पहले नगरपाल मित्रावसु ने प्रमदवन मे चित्र-रचना के लिए हमे यहाँ स्वामी के चरणो मे भेजा था। हम यहाँ नयी आयी है, इसीलिए यह समाचार हमने पहले नही सुना।

कचुकी

तो अब इसके बाद ऐसा मत करना।

परभृतिका-मधुकरिका

आर्य, यदि बताना अनुचित न हो, तो हम जानना चाहेगी कि स्वामी ने इस बार वसन्तोत्सव रोक क्यो दिया है ?

मिश्रकेशी

राजाओ को तो उत्सव बहुत प्रिय होते है, इसलिए इसका कोई बहुत ही बडा कारण होना चाहिए।

कचुकी . (स्वगत)

अब तक यह बात बहुत-से लोग जान गये है। तो क्यो न इन्हे भी

बता दूँ ? (प्रकट) शकुन्तला के तिरस्कार का लोकापवाद आप लोगो ने सुना है ?

परभृतिका-मधुकरिका

नगरपाल के मुँह से हमने अँगूठी मिलने तक का वृत्तान्त सुना है।

कंचुकी

तब तो थोडी ही बात बतानी होगी। अँगूठी देखकर जब से देव को स्मरण हो आया है कि आर्या शकुन्तला से सचमुच उन्होंने एकान्त मे विवाह किया था, तब से ही मोहवश आर्या का तिरस्कार करने के लिए उन्हे बहुत पश्चात्ताप हो रहा है। अब—

सौन्दर्य के उपादानो से वे
खीझ उठते है,
और पहले की तरह
परिचारको की सेवा
स्वीकार नही कर पाते।
शैया पर करवटे बदलते
उनकी सारी-सारी रात
आँखो मे ही बीत जाती है।
अन्त पुर मे
चेष्टा करते है
कि बातो के उत्तर सावधानी से दे,
पर अनजाने मे
किसी की भी जगह
मुँह से शकुन्तला का नाम निकल जाने से,
देर-देर तक वे
लज्जा से सिर झुकाए
चुपचाप बैठे रहते है।

मिश्रकेशी :

कितना अच्छा लग रहा है यह सुनकर !

कंचुकी

इसीलिए, मन बहुत अस्थिर होने से, उत्सव का आयोजन उन्होने रोक दिया है।

नेपथ्य से :

इधर से आइए देव, इधर से !

कंचुकी : (सुनकर)

अरे ! देव तो इधर ही को आ रहे है। तो तुम लोग अब चलकर अपना काम करो।

परभृतिका-मधुकरिका :

हम जा रही है।

चली जाती है। पश्चात्ताप की स्थिति के अनुकूल वेश मे दुष्यन्त का प्रवेश। साथ मे विदूषक और प्रतीहारी है।

कचुकी : (राजा को देखकर)

किसी भी स्थिति मे विशिष्ट आकृति के व्यक्ति के सौन्दर्य मे अन्तर नही आता। इस समय मन सन्तप्त होने पर भी ये देखने मे कितने अच्छे लग रहे है !

और सब अलकरणो का परित्याग करके
केवल एक ही ढीला-सा सोने का वलय
हाथ मे पहन रखा है,
होठो की लाली
उसाँसो से फीकी पड गयी है,
और आँखो मे,
निरन्तर जगते रहने से,
चिन्ता के लाल डोरे उभर आये है।

पर इस पर भी,
अपने आन्तरिक तेज के कारण,
सान पर घिसे महारत्न की तरह,
इनकी क्षीणता
लक्षित नही होती।

मिश्रकेशी (राजा को देखकर)

अपमान और परित्याग की वेदना सहकर भी शकुन्तला ठीक ही इनके लिए दु खी रहती है।

दुष्यन्त : (चिन्ता-भाव से धीरे-धीरे घूमकर)

उस हरिणाक्षी ने
तब इसे जगाना चाहा,
तो भी यह हृदय सोया रहा,
और अब,
जैसे पश्चात्ताप का दु ख सहने के लिए ही,
यह अभागा
जाग उठा है।

मिश्रकेशी :

उस बेचारी का भाग्य ही ऐसा है।

विदूषक : (अपने से)

लो, अब फिर से वही शकुन्तला नाम की हवा इन्हे छू गयी। अब जाने कैसे इसका उपचार होगा ?

कचुकी : (पास आकर)

देव की जय हो। देव, प्रमदवन के सभी स्थान मैने देख लिये है। आप अपनी रुचि से, जिस किसी विनोद-स्थान पर चाहे आसन ग्रहण कर सकते है।

दुष्यन्त

वेत्रवती, तुम जाकर हमारी ओर से अमात्य पिशुन से कह दो कि देर

से जागने के कारण आज हम धर्मासन पर न बैठ सकेंगे। उन्होने नगर का जो भी कार्य देख रखा हो, वह एक पत्र मे लिखकर हमारे पास भेज दे।

प्रतीहारी

जैसी देव की आज्ञा।

चली जाती है।

दुष्यन्त :

पार्वतायन, तुम भी अब अपने कार्य-स्थान पर जाओ!

कचुकी :

जैसी देव की आज्ञा।

चला जाता है।

विदूषक :

सबको आपने भगा दिया। शिशिर बीत जाने से प्रमदवन बहुत रमणीय हो रहा है। अब आप यहाँ अपना मन बहलाएँ।

दुष्यन्त (नि श्वास छोडकर)

मित्र, कहते है कि एक विपत्ति के साथ सौ-सौ विपत्तियाँ और चली आती है। यह बात कितनी सच है! देखो न—

इधर
वह अँधेरा मन से दूर हुआ,
जिसके आवरण मे
मुनिकन्या के प्रणय की स्मृति
खो गयी थी,
और उधर
कामदेव ने
प्रहार करने के लिए
अपने धनुष पर
आम की मजरियो का बाण चढा लिया।

इधर
अँगूठी को देखकर स्मृति लौटी
और मन
प्रिया का
अकारण अनादर करने के दुख से रो उठा,
और उधर
इसे और व्याकुल करने के लिए,
नये वसन्त की नयी सुगन्ध
उडकर पास आने लगी।

विदूषक :

तुम ठहरो मित्र, मै अभी अपने डण्डे से कामदेव के इन बाणो का नाश करता हूँ।

डण्डा उठाकर आम की मंजरियों पर प्रहार करने लगता है।

दुष्यन्त (मुसकराकर)

रहने दो, मैने तुम्हारा ब्रह्मतेज देख लिया है। बताओ, अब कहॉ बैठे जहॉ उस रूपसी जैसी कोमल लताओ मे घिरकर ऑखो को थोडा सुख दिया जा सके।

विदूषक

आपने अपनी उस निकट परिचारिका से, जो बहुत मेधाविनी और रेखाकन मे कुशल है, कहा था कि आप यह समय माधवीलता-भवन मे बिताएँगे, इसलिए वह आर्या शकुन्तला की चित्राकृति, जो आपने चित्रफलक पर अपने हाथ से बनायी है, लेकर वही आ जाय।

दुष्यन्त

अरे, हॉ! अब हृदय के लिए इतना ही तो आश्वासन रह गया है। तो चलो, माधवीलता-भवन का मार्ग दिखाओ।

विदूषक

आइए, इधर से आइए।

दोनो घूमते हैं। मिश्रकेशी उनके पीछे-पीछे जाती है।

विदूषक

यह रहा मणिशिलाओ से युक्त माधवीलता-मण्डप। अपने सहज एकान्त, फूलो की रमणीयता और भीनी हवा से यह जैसे स्वागत-सकेत देकर आपको बुला रहा है। आइए, इसके अन्दर चलकर बैठिए।

दोनो मण्डप के अन्दर जाकर बैठ जाते हैं।

मिश्रकेशी

यहाँ लताओ मे छिपकर देखती हूँ कि शकुन्तला की चित्राकृति इन्होने कैसी बनायी है। जाकर उसे बताऊँगी कि पति के मन मे उसके लिए कितना मान और अनुराग है।

छिपकर खड़ी हो जाती है।

दुष्यन्त (नि श्वास छोडकर)

शकुन्तला से पहली बार मिलने से लेकर वह सारा वृत्तान्त अब मुझे याद आ रहा है। तब वह सब मैने तुम्हे बताया भी था। उस समय जब मैने उसका अनादर किया, तुम पास मे नही थे। पर पहले भी कभी तुमने मेरे सामने उसका नाम नही लिया। क्या मेरी तरह तुम भी उसे भूल गये थे ?

मिश्रकेशी

इसीलिए तो कहते है कि राजाओ को क्षणभर के लिए भी अपने सहायक मित्रो को अपने से दूर नही करना चाहिए।

विदूषक

मैं भूला नही था, पर सारी बात बताकर अन्त मे चलते समय

आपने यह भी तो कहा था कि वह सब हँसी की बात है, मै कही उसे सच न मान लूँ। मैने मूर्खतावश यही समझा कि आप ऐसा कह रहे है, तो ऐसा ही होगा। और जब होनी ही ऐसी थी, तो उसमे कोई कर ही क्या सकता था ?

मिश्रकेशी

हाँ, ठीक ही तो कह रहा है यह।

दुष्यन्त (पलभर सोचता रहकर)

अब किसी तरह मुझे बचाओ, मित्र !

विदूषक :

मेरी समझ मे नही आता कि आपको यह हो क्या रहा है ? भले आदमी कभी इस तरह शोक से व्याकुल नही होते। कितनी भी आँधी चले, पहाड अपनी जगह पर टिके रहते है।

दुष्यन्त :

मित्र, जब यह सोचता हूँ कि मेरे तिरस्कार कर देने से उसके मन को कितना धक्का लगा होगा, और तब से उसकी क्या दशा होगी, तो अपना-आप मुझे बहुत असहाय-सा लगने लगता है।

मेरे तिरस्कार कर देने पर
वह बेचारी
अपने बन्धुओ के पीछे-पीछे जाने को हुई,
तो उधर से
गुरु के समान उसके गुरु-शिष्य ने
ऊँचे स्वर मे
उसे पीछे आने से रोक दिया।
ऐसे मे
मेरी क्रूरता को उलाहना देती,
ढुलते आँसुओ से रुँधी दृष्टि से
उसने जैसे मेरी ओर देखा,

उसे याद करके
एक विष-बुझा बाण
हृदय मे गड जाता है।

मिश्रकेशी :

ओह ! इनकी यह विवशता मेरे हृदय को भी कितना सन्तप्त कर रही है !

विदूषक :

मित्र, मेरे मन मे एक आशका उठ रही है। वह कौन आकाश-चारी जीव था जो उसे यहाँ से उठा ले गया था ?

दुष्यन्त :

उस पतिव्रता को कोई और छू भी सकता है ? उसका जन्म मेनका के गर्भ से हुआ था, ऐसा उसकी सखियो से मैने सुना था। मुझे लगता है कि या तो वही उसे उठा ले गयी होगी, या उसकी कोई सहचरी।

मिश्रकेशी

इस व्याकुल मन स्थिति मे भी इनका इस तरह सचेत भाव से सोच सकना आश्चर्यजनक है।

विदूषक :

यदि ऐसा है तो आपको आश्वासन रखना चाहिए कि कुछ ही समय मे आपकी अवश्य उनसे भेट होगी।

दुष्यन्त

यह तुम कैसे कहते हो ?

विदूषक :

बेटी का पति-वियोग का दु ख माता-पिता से बहुत दिनो तक नही देखा जाता।

दुष्यन्त

मित्र,

उससे मिलन
जाने एक सपना था,
या माया,
या जाने
अपनी ही मति का एक विभ्रम था,
या पहले के पुण्यो का कोई फल।
वह बीता समय
अब कभी लौटकर नही आएगा,
और आज की अभिलाषाएँ
शिखर से ढुलते झरने की तरह
नीचे गिरकर छितरा जाएँगी।

विदूषक :

ऐसा नही होगा मित्र! अँगूठी का मिलना अपने मे ही इसका प्रमाण है। जो होना हो, वह कैसे हो जाएगा, यह कभी सोचा भी नही जा सकता।

दुष्यन्त : (अँगूठी को देखकर)

इसे देखकर भी दया आती है कि कैसे दुर्लभ स्थान तक पहुँचकर यह नीचे गिरी है!

तुम्हारा गिरना
प्रमाण है अगुलीय,
कि तुम्हारे पुण्यो की मात्रा
बहुत क्षीण थी!
अन्यथा,
लाल-लाल नखो से चमकती
उसकी उँगलियो तक पहुँचकर
उनसे तुम्हे
इस तरह गिरना न पडता।

मिश्रकेशी

यह किसी और के हाथ मे जा पडती, तब तो सचमुच इस पर दया आती। तुम यहाँ नही हो शकुन्तला, इसलिए यह सब सुनने का सुख अकेली मुझी को मिल रहा है।

विदूषक :

अच्छा, एक बात बताएँ। आपने यह अँगूठी उसके हाथ मे पहनायी किस उद्देश्य से थी ?

मिश्रकेशी :

यह बात पूछकर इसने मेरे मन मे भी उत्सुकता भर दी है।

दुष्यन्त :

जब मै तपोवन से नगर के लिए चलने लगा, तो उसने आँखो मे आँसू भरकर मुझसे पूछा था, 'अब आर्यपुत्र कितने दिनो मे मुझे याद करेंगे ?'

विदूषक :

फिर ?

दुष्यन्त :

तब यह अँगूठी उसकी उँगली मे पहनाकर मैने उत्तर दिया था..

विदूषक :

क्या उत्तर दिया था ?

दुष्यन्त :

•••कि

इसमे
मेरे नाम के जितने अक्षर है,
उनमे से
एक-एक अक्षर
एक-एक दिन मे तुम गिना करना।
इस तरह

जब तक तुम नाम के अन्त तक पहुचो,
उससे पहले ही
मेरे अन्त पुर का कोई व्यक्ति
मेरा आदेश लेकर
तुम्हे लिवा ले जाने के लिए
यहाँ पहुँच जाएगा ।

पर ऐसा निष्ठुर हूँ मै कि अपने वचन का पालन मैने किया नही ।

मिश्रकेशी :

जीवन का कितना सुन्दर समय था जो भाग्यवश इनके विपरीत हो गया ।

विदूषक :

पर कँटिया पर लगे चारे की तरह यह अँगूठी उस रोहित मछली के पेट मे कैसे जा पहुँची ?

दुष्यन्त :

शचीतीर्थ मे जल की वन्दना करते समय यह उसकी उँगली से गगा की धारा मे जा गिरी थी ।

विदूषक :

अब बात समझ मे आयी ।

मिश्रकेशी .

तो इसलिए, पाप से दूर रहने वाले इस राजर्षि को बेचारी शकुन्तला से अपने विवाह की बात पर सन्देह हुआ ! पर जहाँ इतना अनुराग हो, वहाँ स्मृति-चिन्ह की तो अपेक्षा ही नही रह जाती । फिर ऐसा हुआ क्योकर ?

दुष्यन्त

इसलिए मै इस अँगूठी को ही दोष देता हूँ ।

विदूषक

यह तो उसी तरह हुआ जैसे मै अपने डण्डे को दोष देने लगूँ कि मै

इतना सीधा हूँ और यह इतना टेढा है !

दुष्यन्त (उसकी बात अनसुनी करके)

अगुलीय, ,
उसकी उगलियो के कोमल पोर छोडकर
पानी-से डूबते
तुमसे बना कैसे ?
पर
तुम तो अचेतन हो
इसलिए
उसके गुणो को न पहचान सकी,
मुझे यह पूछना अपने से चाहिए
कि मुझसे
उसका तिरस्कार कैसे किया जा सका ?

मिश्रकेशी :

जो मै कहना चाहती थी, वह इन्होने स्वय ही कह दिया।

विदूषक

लगता है आज मुझे भूखो मरना पडेगा।

दुष्यन्त (उसकी बात की ओर ध्यान न देकर)

मैने अकारण तुम्हारा परित्याग किया शकुन्तला, इसलिए हृदय पश्चात्ताप से जल रहा है। तुम मुझ पर दया करो और फिर एक बार मुझे अवसर दो कि मै तुम्हारा साक्षात्कार कर सकूँ।

चेटी चित्रफलक लिये हुए आती है।

चेटी . (चित्रफलक दिखाकर)

स्वामी, ये रही आर्या—इस चित्रफलक मे।

दुष्यन्त . (देखकर)

ओह ! चित्र मे भी इसका रूप कितना सुन्दर है !

कोरो तक फैली

बडी-बडी आँखे
और कौतुक से काँपती
पतली भौहे,
उजले दाँतो मे फूटती
हँसी की चाँदनी,
निचले होठ को
अपनी किरणो से ढाँपती हुई,
लाल-लाल बेरो-जैसे
होठो की एक अपनी चमक,
और भावोद्रक के कारण
मुँह पर आयी पसीने की भिलमिल जालियाँ, —
यह जानते हुए भी
कि सामने की आकृति
वह स्वय नही
केवल उसका चित्र है,
यूँ लगता है
जैसे अभी-अभी
यह मुँह खोलेगी
और मुझसे बात करेगी।

विदूषक (देखकर)

सच मित्र, तुमने आर्या का भाव ऐसे सजीव रूप मे अकित किया है कि मेरी आँखे इसके छिपे अगो पर टिक ही नही पाती। इस भ्रम मे कि सचमुच इसमे प्राण-सचार हो गया है, मन होता है कि इससे बात करने लगूँ।

मिश्रकेशी.

सच, ये राजर्षि तूलिका से रेखाकन करने मे कितने निपुण है! यही लगता है जैसे स्वय शकुन्तला मेरे सामने खड़ी हो।

दुष्यन्त

अपने अनुबन्धो से
चित्रकार
रूप की किसी भी असगति को
सगन्ति मे बदल देता है,
परन्तु
मेरा सारा प्रयत्न
उसके रूप को
बस अश मात्र ही
चित्रित कर पाया है।

किन्तु,

समतल फलक पर भी
उसके स्तनो का उभार,
नाभि की गहराई,
और त्रिवली का लहरिया देखकर,
और दिनो के तैल-प्रयोग से चिकने
अगो की कोमलता का आभास पाकर,
ऐसे लग रहा है
जैसे वह स्वय,
मुसकराती हुई
अधमुँदी आँखो से
मेरी ओर देख रही है,
और अभी-अभी
मुझसे कुछ कहने जा रही है।

मिश्रकेशी

पश्चात्ताप मन मे इतना अनुराग बढा देता है कि सचमुच व्यक्ति को ऐसे ही लगने लगता है।

दुष्यन्त (नि श्वास छोडकर)

वह स्वय सामने थी,
तो मैने उसका तिरस्कार कर दिया,
पर आज
उसके चित्र को ही
अपने लिए सब-कुछ मान रहा हूँ।
रास्ता चलते
मुझे भरी हुई नदी मिली,
तो मै उसके पास से निकल आया,
और इस समय
सामने एक मृगतृष्णा देखकर
उसी से प्यास बुझाने के लिये
व्याकुल हो रहा हूँ।

विदूषक

अच्छा मित्र, इस चित्र मे ये तीन आकृतियाँ है न। देखने मे तो ये सभी सुन्दर जान पडती है, इनमे से शकुन्तला कौन-सी है?

मिश्रकेशी

इसने शकुन्तला को प्रत्यक्ष नही देखा इसलिए उसके रूप से अपरिचित इसकी आँखे व्यर्थ ही है।

दुष्यन्त

तुम बताओ, तुम्हे इनमे से कौन-सी शकुन्तला जान पडती है?

विदूषक (अच्छी तरह देखकर)

मेरे विचार मे यह शकुन्तला है जिसने एक हाथ से अपने खुले केश सँभाल रखे है जिनसे फूल नीचे गिर गये है, जिसके चेहरे पर पसीने की मोटी-मोटी बूँदे है और कन्धे झुके रहने से जिसकी कोमल बाँहे शिथिल-सी दिखायी पड रही है, जिसके वस्त्र की गाँठ कुछ ढीली-सी है और जो थकी-थकी-सी इस छोटे-

से आम के पेड के पास खडी है जिसकी पत्तियाँ सीचने के बाद चिकनी हो उठी है। शेष दोनो उसकी सखियाँ है।

दुष्यन्त :

तुम पहचानने मे बहुत निपुण हो। इस आकृति पर मेरी भावना के चिह्न भी तुम देख सकते हो।

मेरी उँगलियो के पसीने से
इसके छोर की रेखाएँ
मैली पड गयी है,
और कपोल का यह उभरा-उभरा रग
मेरी आँख से गिरा एक आँसू है।

(चेटी से) चतुरिका, चित्र मे इनके विनोद-स्थान का हमने अभी अधूरा ही अकन किया है। तुम जाकर हमारी तूलिकाएँ ले आओ।

चतुरिका

आर्य माधव्य, मेरे आने तक आप जरा इस चित्रफलक को पकडे रहिए।

दुष्यन्त

मै पकडे रहूँगा।

वैसा ही करता है। चतुरिका चली जाती है।

विदूषक

अब इसमे और क्या चित्रित करना है ?

मिश्रकेशी

लगता है कि जो-जो प्रदेश शकुन्तला को प्रिय रहे है, उन्ही को ये चित्रित करना चाहते है।

दुष्यन्त :

सुनो, मित्र !

अकित करूँगा अभी

वह नदी मालिनी
जिसके रेतीले तटो पर
हसो के जोडे किलोल करते है,
और उसके चारो ओर
हिमालय के पावन निम्नभाग
जहाँ चामर हरिणो के आवास है।
उसके बाद अकित
एक वृक्ष
जिसकी शाखाओ से वल्कल लटक रहे होगे
और उसके नीचे
काले हरिण की बायी आँख के पास
धीरे-धीरे अपने सीग से खुजलाती
एक भोली-सी हरिणी।

विदूषक (स्वगत)

इन बातो से तो लगता है कि आसपास लम्बी-लम्बी दाढियो वाले कई एक वल्कलधारी तपस्वी बनाकर ये इस चित्र को पूरा करेगे।

दुष्यन्त

और मित्र, शकुन्तला के कुछ और प्रसाधन भी होने चाहिएँ जिन्हे चित्रित करना हम भूल गये है।

विदूषक

क्या प्रसाधन है वे ?

मिश्रकेशी

शकुन्तला के वन-जीवन और कौमार्य भाव के अनुरूप ही कोई प्रसाधन होगे।

दुष्यन्त

अभी अकित नही किया
वह शिरीष का फूल

जो उसके कानो से लटककर
उसके गालो को सहलाया करता था,
और न ही वह मृणाल-सूत्र
जो उसके स्तनो के अन्तर्भाग मे
शरत्कालीन चन्द्रमा की
एक कोमल किरण की तरह पडा रहता था।

विदूषक

यह क्या है ..यह बेचारी अपने रक्त-कमल जैसे कोमल हाथ से मुँह छिपाये इस तरह व्याकुल-सी क्यो लग रही है ? (अच्छी तरह देखकर) हो हो हो हो हो ! यह फूलो के रस का चोर, दासी का बेटा, दुष्ट भौरा इसके मुख-कमल का रसपान करना चाहता है !

दुष्यन्त :

अरे, हटाओ न इस ढीठ को !

विदूषक

दुष्टो के शासक आप है, इसलिए आप ही इसे हटा सकते है।

दुष्यन्त

तुम ठीक कहते हो। सुन रे फूलो की बेल के प्रिय अतिथि, तू क्यो व्यर्थ ही इसके पास आकर दु ख और खेद का अनुभव कर रहा है ?

उधर देख,
उस फूल पर बैठी भौरी
प्यासी होते हुए भी
तेरे अनुराग के कारण
अकेली रसपान नही कर रही,
वह राह देख रही है
कि कब तू
लौटकर उधर आये,
और वह तेरे साथ मिलकर

रसपान आरम्भ करे।

मिश्रकेशी

कैसे रोक रहे है उस बेचारे को !

विदूषक :

मित्र, यह जाति ही ऐसी है कि रोकने से रुकती नही।

दुष्यन्त : (क्रोध के साथ)

अच्छा तो तू मेरा शासन नही मानता ? सुन मधुकर,

मैने भी
रति के समय
नये-नये
और अधखिले पेड की पत्तियो जैसे
उसके होठो का रसपान
कोमल भाव से ही किया है,
तू यदि उसके बिम्बाधर पर
निर्दय दश करेगा,
तो मै अभी तुझे
कमल-कोष मे बन्दी कर दूँगा।

विदूषक

हॉ, ऐसा कडा दण्ड दोगे, तो कैसे नही डरेगा ? (हंसकर, स्वगत) इन पर तो पागलपन छाया ही है, साथ मेरा भी वही हाल हो रहा है।

दुष्यन्त :

अरे ! मै इसे हटा रहा हूँ, और यह फिर भी यहॉ से नही टल रहा ?

मिश्रकेशी

गम्भीर से गम्भीर व्यक्ति भी प्रेम मे पडकर कैसे पागल हो उठता है !

विदूषक : (प्रकट)

मित्र, यह तो केवल चित्र है।

दुष्यन्त :

चित्र है ?

मिश्रकेशी

मुझे भी अब तक यह जैसे वास्तविक-सा लग रहा था, फिर इनकी तो बात ही क्या जो इस समय जी ही अपनी कल्पना मे रहे है।

दुष्यन्त :

यह कैसी सूझ-बूझ है तुम्हारी !

मेरा तन्मय हृदय,
जैसे सचमुच उसे सामने पाकर,
सुख का अनुभव कर रहा था,
कि तुमने सहसा
मुझे याद दिलाकर
फिर से प्रिया को
केवल एक चित्र बना दिया !

आँखो मे आँसू भर आते है।

मिश्रकेशी :

विरह का एक अपना ही मार्ग है जिसमे किसी पूर्वापर सम्बन्ध का विचार नही रहता।

दुष्यन्त

मित्र, क्यो मुझे ऐसे निरन्तर दुःख सहना पड रहा है ?

हर समय जागते रहने से
स्वप्न मे भी
उससे मिलन सम्भव नही,
और उसका चित्र सामने है, तो
उमडते आँसू

इसे भी ठीक से देखने नही देते।

मिश्रकेशी :

शकुन्तला की सखी के सामने यह कहकर उसके तिरस्कार का दु ख आपने दूर कर दिया।

चतुरिका (आकर)

स्वामी की जय हो। स्वामी, तूलिकाओ की पिटारी लेकर जब मैं इधर आने लगी

दुष्यन्त :

तो क्या हुआ ?

चतुरिका :

तो पिगलिका ने यह बात देवी वसुमती को बता दी। देवी वसुमती ने यह कहकर कि 'मै स्वय इसे आर्यपुत्र के पास ले आऊँगी', पिटारी मेरे हाथ से छीन ली।

विदूषक :

और तू कैसे बच आयी ?

चतुरिका :

देवी के उत्तरीय का आँचल एक पेड की बेल मे उलझ गया था। पिगलिका अभी उसे छुडा ही रही थी कि मै झट से एक ओर छिपकर निकल आयी।

दुष्यन्त

देवी वसुमती अब इधर ही आ रही होगी, मित्र ! वे बहुत मान और गर्व मे है, इसलिए इस चित्र की रक्षा अब तुम्ही को करनी है।

विदूषक :

साथ अपनी भी रक्षा करनी है, यह भी कहो न ! (चित्र सँभालकर उठता हुआ) यदि अन्त पुर के कूटजाल से किसी तरह छुटकारा पा जाओ तो मेघच्छन्न प्रासाद मे आकर मुझे पुकार लेना। चित्र को मै ऐसी जगह छिपाकर रखूँगा कि सिवाय कबूतरो के

किसी को इसकी टोह तक न मिलेगी।

जल्दी से चला जाता है।

मिश्रकेशी :

कितना स्थायी है इनका प्रेम ! हृदय मे किसी और के लिए भावना है, फिर भी ये अपने पहले प्रणय का भी उतना ही आदर करते है।

पत्र हाथ में लिये वेत्रवती का प्रवेश।

प्रतीहारी :

देव की जय हो !

दुष्यन्त :

क्यो वेत्रवती, आते हुए रास्ते मे तुमने देवी वसुमती को तो नही देखा ?

प्रतीहारी :

देखा है, देव ! पर मुझे यह पत्र लिये आते देखकर वे लौट गयी है।

दुष्यन्त

देवी राज-कार्यो के महत्त्व को समझती है, कभी मेरे किसी कार्य मे बाधा नही डालती।

प्रतीहारी :

देव, अमात्य ने निवेदन किया है कि आज राजकार्य बहुत है, इसलिए वे प्रजा का एक ही कार्य देख पाये है। वह उन्होने इस पत्र मे लिख दिया है जिससे आप अपना निर्णय दे सके।

दुष्यन्त :

दिखाओ पत्र मुझे।

प्रतीहारी पत्र पास ले आती है।

(पढता हुआ) देवचरणो मे निवेदन है कि धनवृद्धि नाम का वणिक, जो पानी के रास्ते वस्तुओ के यातायात का व्यवसाय करता था, नाव डूब जाने मे परलोक सिधार गया है। उसके कोई सन्तान

नही है और वह कई करोड का धन पीछे छोड गया है। वह सारा धन अब राजकोष मे आना चाहिए—आगे जैसे देव आदेश दे।' (खेदपूर्वक) सन्तान का न होना कितने दुःख की बात है। पर वेगवती, इतने धनवान् व्यक्ति की तो कई पत्नियाँ होनी चाहिएँ। पता करो कि उसकी कोई पत्नी गर्भवती तो नही है ?

प्रतीहारी :

अभी-अभी साकेतपुर के एक श्रेष्ठी की बेटी का पुंसवन-संस्कार हुआ है जो कि सुना है उसकी पत्नी है।

दुष्यन्त :

तो वह गर्भस्थित शिशु अपने पिता के धन का अधिकारी है। यह जाकर तुम अमात्य से कह दो।

प्रतीहारी :

जैसी देव की आज्ञा।

चल देती है।

दुष्यन्त :

और सुनो

प्रतीहारी : (लौटकर)

आदेश दे।

दुष्यन्त :

किसी के सन्तान है या नही, इस वितर्क मे पडने की आवश्यकता नही।

घोषणा कर दो
कि इस राज्य मे
प्रजा के किसी भी व्यक्ति का
किसी भी बन्धु से वियोग हो,
तो पाप-परक सम्बन्धो को छोडकर
और सब सम्बन्धो मे

दुष्यन्त को वह
अपना वही बन्धु माने ।

प्रतीहारी :

यह घोषणा अभी कर दी जाती है। (जाकर और लौटकर) देव, समय पर हुई वर्षा की तरह आपकी इस घोषणा का सभी बडे-बडे लोगो ने स्वागत किया है।

दुष्यन्त : (लम्बी और ठडी साँस भरकर)

कितने दु ख की बात है कि सन्तान के न रहने से जो वश आश्रय-हीन होते है, उनकी सम्पत्ति मूल व्यक्ति की मृत्यु के बाद दूसरो के हाथ मे चली जाती है ! मेरे बाद पुरुवश की सारी समृद्धि भी ऐसे ही हो रहेगी जैसे समय पर बीज न पड़ने मे उर्वर भूमि !

प्रतीहारी :

ऐसा अमगल कभी नही होगा।

दुष्यन्त :

धिक्कार तो मुझे है जिसने घर आये मगल का स्वय तिरस्कार किया है।

मिश्रकेशी :

नि सन्देह ये शकुन्तला के विषय मे सोचकर ही अपने को इस तरह लाछित कर रहे है।

दुष्यन्त

जैसे कोई
समय पर बीज डालने के बाद,
शस्य श्यामला होने को आतुर
धरती से मुँह मोड ले
उसी तरह मैने
उसमे अपनी आत्मा को आरोपित तो किया,
परन्तु उसके बाद

कुल की प्रतिष्ठा-रूप
उस धर्मपत्नी का
परित्याग कर दिया।

मिश्रकेशी

पर अब वह परित्यक्ता नही रहेगी।

चतुरिका (अलग से)

जाने क्या सोचकर अमात्य ने आज वह पत्र इनके पास भेज दिया! देखो न आर्या, कैसे स्वामी की आँखो मे आँसू उमड आये है! ये इस समय अपने विवेक से शोक पर वश नही पा सकेगे। तुम मेघच्छन्न प्रासाद से आर्य माधव्य को बुला लाओ। वही आकर इन्हे शान्त कर सकेगे।

प्रतीहारी

तुम ठीक कहती हो।

चली जाती है।

दुष्यन्त

ओह! दुष्यन्त के पितर भी सशय मे पडे है!
मेरे बाद
कौन इस कुल मे
श्रुति-सम्मत रीति से
उन्हे पिण्डदान करेगा,
यह सोचकर
मेरे पितर
इन सन्तानहीन हाथो का दिया जल
जब पीते है,
तो उसमे
उनके आँसुओ का जल भी
मिला रहता है!

मिश्रकेशी

कितने दु ख की बात है कि दीये के रहते भी इन्हे बीच के व्यवधान के कारण आसपास अँधेरा दिखायी दे रहा है।

चतुरिका

इस तरह दु खी न हो, स्वामी ! आपकी अभी वह अवस्था है जिसमे दूसरी किसी रानी से योग्य पुत्र पाकर आप पितृ-ऋण उतार सकते है। (स्वगत) मेरी बात तो ये सुन ही नही रहे। हाँ, ठीक औषध मिले, तभी तो न रोग दूर होता है।

दुष्यन्त (शोक का अभिनय करके)

अनार्य देश मे आकर
जैसे
सरस्वती की धारा सूख जाती है,
वैसे ही
मुझ अनार्य तक आकर
पौरव वश की
प्रशस्त सन्तति-परम्परा
अब अदृश्य होने को है।

मूर्च्छित हो जाता है।

चतुरिका (हडबडाहट के साथ)

धीरज रखे, स्वामी, धीरज रखे।

मिश्रकेशी

क्या अभी सब-कुछ बताकर इन्हे शान्त कर दूँ ? पर नही, शकुन्तला को आश्वासन देते हुए देवमाता कह रही थी कि अपना यज्ञ-भाग पाने के लिए देवता स्वय ऐसा आयोजन करेगे जिससे राजर्षि शीघ्र ही अपनी धर्मपत्नी के रूप मे उसका अभिनन्दन करे। तो मेरा अब यहाँ और रुकना ठीक नही। मै चलकर शकुन्तला को यह सब समाचार दे दूँ जिससे उसे थोडा आश्वासन मिले।

उद्भ्रान्त सी वहाँ से चली जाती है।

नेपथ्य से

सुनो भाई, मै ब्राह्मण हूँ। ब्राह्मण की हत्या मत करो।

दुष्यन्त (चेतना लौट आने से उधर कान देकर)

यह तो माधव्य के आर्तनाद का शब्द प्रतीत होता है।

चतुरिका

कही ऐसा तो नही कि चित्रफलक हाथ मे होने मे पिगलिका तथा अन्य दासियो ने मिलकर उसे घेर लिया हो ?

दुष्यन्त

तो तुम उधर जाकर देख लो, चतुरिका! मेरी ओर से देवी वसुमती से कह भी दो कि उन्हे अपनी दासियो को इस तरह के व्यवहार से रोकना चाहिए।

चतुरिका चली जाती है।

नेपथ्य से पुन :

कह रहा हूँ मै ब्राह्मण हूँ। ब्राह्मण की हत्या मत करो, मत करो!

दुष्यन्त :

मारे डर के बेचारे ब्राह्मण का तो स्वर ही बदल गया लगता है। यहाँ कोई है ?

कंचुकी (आकर)

आज्ञा दे, देव!

दुष्यन्त

जाकर देखो कि बेचारा माधव्य क्यो इस तरह छटपटा रहा है ?

कंचुकी

अभी देखकर आता हूँ।

जाकर घबराया-सा लौटकर आता है।

दुष्यन्त :

क्या बात है, पार्वतायन ? कोई बडी दुर्घटना तो नही हुई ?

कंचुकी

नही, वैसा कुछ नही हुआ।

दुष्यन्त

तो इस तरह् कॉप क्यो रहे हो ?

यूँ तो बुढापे से ही
तुम्हारा शरीर
हर समय कॉपता रहता है,
पर इस समय की कॅपकॅपी
कुछ ऐसी है
जैसे हवा के झोके ने
पीपल की एक-एक पत्ती को
हिलाकर रख दिया हो।

कंचुकी

महाराज, आप अपने मित्र की रक्षा करे।

दुष्यन्त :

पर किससे रक्षा करूँ उसकी ?

कचुकी

एक बहुत बडी विपत्ति से।

दुष्यन्त :

तुम बात स्पष्ट करके कहो न।

कंचुकी

वह मेघच्छन्न प्रासाद है न. जहॉ से सभी दिशाएँ देखी जा सकती है ?

दुष्यन्त :

हॉ, पर वहॉ हुआ क्या है ?

कंचुकी

उसके ऊँचे शिखर से,

जिसे लाँघने के लिए
हमारे पाले हुए नीलकण्ठ
कई-कई उडाने भरा करते है,
एक अदृश्य जीव
आपके मित्र को
जाने कहाँ पकडकर ले गया है !

दुष्यन्त (सहसा उठकर)

तो क्या हमारे घर मे भी ऐसे जीवो का आवास है ? सच, राज-शासन के रहते भी कितने-कितने अनाचार हो जाते है।

यही जानना सम्भव नही
कि एक के बाद
दूसरा दिन आने तक
व्यक्ति
प्रमादवश
स्वय क्या-क्या अकर्म कर जाता है,
तो फिर
यह जानने की सामर्थ्य किसमे है
कि प्रजा मे
कब कौन
किस मार्ग या अमार्ग पर चलता है ?

नेपथ्य से

शीघ्र आओ मित्र . जैसे भी हो शीघ्र इधर आओ।

दुष्यन्त (सुनकर जल्दी-जल्दी चलता हुआ)

डरो नही, मित्र, डरो नही।

नेपथ्य से :

डरूँ कैसे नही ? यह जाने कौन है जो मेरी गरदन को ऊख की तरह मरोडकर मेरी हड्डी-पसली एक किये दे रहा है।

दुष्यन्त : (इधर-उधर दृष्टि दौड़ाकर)

मेरा धनुष मुझे दो, धनुष।

प्रतीहारी धनुष लिये हुए आती है।

प्रतीहारी

स्वामी की जय हो। यह रहा धनुष, ये बाण, और यह हस्तावरण।

दुष्यन्त धनुष और बाण ले लेता है।

नेपथ्य से :

यह ले,
तेरे गले का नया-नया लहू
पीने की आकाक्षा से
मै तेरे प्राण लेता हूँ,
बाघ के पजो मे
छटपटाते पशु की तरह
तू अब मुझसे
बचकर नही जा सकता!
आर्त्त की रक्षा के लिए
धनुष उठाने वाले
राजा दुष्यन्त मे यदि शक्ति है,
तो आकर वह
बचाए तुझे कैसे बचाता है!

दुष्यन्त (क्रोध के साथ)

अरे, यह मुझी को लक्ष्य करके ऐसा कह रहा है! तू ठहर तो जा नीच शव-भक्षक! अभी यहाँ तेरा नाम तक नही रहने दूँगा। (धनुष चढाकर) पार्वतायन, सोपान किधर से है, जरा बताना।

कंचुकी

इधर से आएँ, देव!

सब जल्दी-जल्दी चलते है।

दुष्यन्त (चारो ओर देखकर)

अरे ! यहाँ तो कोई भी दिखायी नही दे रहा ।

नेपथ्य से

बचाओ मुझे, मेरी रक्षा करो ! मै तुम्हे देख रहा हूँ, और तुम मुझे नही देख पा रहे। मै उसी तरह जीवन से निराश हो चुका हूँ जैसे बिल्ली के पंजे मे जकडा चूहा !

दुष्यन्त

ओह, तो अपनी तिरस्करिणी विद्या का मान है तुम्हे ! तुम समझते हो कि मेरा शस्त्र भी तुम्हे नही देख पाएगा ? अब रुके रहो, और इस भरोसे मत रहो कि मेरा मित्र तुम्हारे साथ है, इसलिए तुम इस बाण से बच जाओगे। यह मै बाण चढा रहा हूँ।

इसे तुम्हारा वध करना है,
इसलिए
यह बाण केवल तुम्हारी ओर ही आएगा,
उस ब्राह्मण की ओर नही,
जिसकी इसे रक्षा करनी है।
हस है यह बाण,
जो पानी से
दूध को अलग कर लेता है।

धनुष चढाता है। विदूषक के साथ मातलि का प्रवेश।

मातलि

आयुष्मान्,
आपके बाणो का लक्ष्य
असुर बने—
ऐसा इन्द्र का निश्चय है,
इसलिए अपना यह धनुष

आप उन्ही की ओर खीचिएगा।
हम आपके मित्र है ,
और मित्रो का स्वागत
स्नेह से मुसकराती
आँखें से किया जाता है,
तीखे-तीखे बाणो से नही ।

दुष्यन्त (अचकचाकर धनुष परे हटाता हुआ)
अरे, मातलि, तुम ? स्वागत है, इन्द्र-सारथी !

विदूषक
क्या सूझ-बूझ है ! यह तो मुझे पशु की मौत मारने जा रहा था और आप है कि इसका स्वागत और अभिनन्दन कर रहे है !

मातलि (मुसकराकर)
इन्द्र ने आपके पास जिस उद्देश्य से मुझे भेजा है, वह मै आपको बता देता हूँ ।

दुष्यन्त
मै ध्यान से सुन रहा हूँ ।

मातलि
दुर्जय नामक एक दानव-समुदाय है जो कि कालनेमि के वश से है ।

दुष्यन्त
उसकी चर्चा मै पहले भी नारद के मुँह से सुन चका हूँ ।

मातलि .
आपके सखा
इन्द्र के हाथो
उसका वध सम्भव नही,
इसलिए
रणभूमि मे
उसे मार गिराने के लिए

उन्होने आपका स्मरण किया है ।
रात्रि के अन्धकार को चीरना
सूर्य के वश का नही ,
'उसका विनाश
चन्द्रमा की किरणो से ही हो सकता है ।

तो अब इसी तरह शस्त्र लिये हुए आप मेरे साथ देवरथ मे बैठकर विजय-यात्रा के लिए चल दे ।

दुष्यन्त

मै अनुगृहीत हूँ कि देवपति ने मुझे यह सम्मान दिया है। पर बेचारे माधव्य को तुमने इस तरह क्यो दबोच रखा था ?

मातलि : (मुसकराकर)

वह भी सुन लीजिए। मैने आकर देखा कि किसी कारणवश आपका मन सन्तप्त है और आप बहुत अव्यवस्थित है। सोचा कि ऐसा कुछ करूँ जिससे आपका क्रोध जाग जाय।

आग धधकाने के लिए ,
ईधन को थोडा हिलाना होता है,
साँप फण तभी उठाता है
जब उसे थोडा छेड दिया जाता है ।
तेजस्वी व्यक्ति का स्वभाव भी कुछ ऐसा ही है—
उसका तेज जगाना हो तो,
उसे थोडा विक्षुब्ध करना ही पडता है।

दुष्यन्त :

यह अच्छी युक्ति अपनायी तुमने। (विदूषक से) मित्र, देवपति की आज्ञा का उल्लघन नही किया जा सकता, इसलिए यह सब वृत्तान्त बताकर मेरी ओर से अमात्य पिशुन से कह दो कि—

तब तक
वह अपने ही विवेक से

प्रजा की देखभाल करे,
जब तक
यह खिचा धनुष
इस दूसरे कार्य मे
व्यस्त रहेगा ।

विदूषक :

जैसी आज्ञा ।

चला जाता है ।

मातलि :

तो आइए, रथ मे बैठिए ।

दुष्यन्त रथ में बैठता है । सब का प्रस्थान ।

।। छठा अंक ।।

अंक सात

रथ में बैठकर आकाश-मार्ग से आते दुष्यन्त और मातलि का प्रवेश ।

दुष्यन्त :

मातलि, यह ठीक है मैने देवपति के आदेश का पालन किया, पर उन्होने जितना मेरा सत्कार किया, उतने के योग्य मै नही था ।

मातलि : (मुसकराकर)

यह असन्तोष तो दोनो ओर से ही है ।

आपको
अपना उपकार
वहाँ मिले सत्कार की तुलना मे
छोटा जान पडता है,
और देवपति का विचार है
कि जो कुछ आपने किया,
उसके अनुपात मे
आपका सत्कार
कुछ भी नही हुआ ।

दुष्यन्त

ऐसा तुम नही कह सकते । विदाई के समय उन्होने मेरा जो सम्मान किया, उसकी तो कल्पना भी मेरे मन मे नही थी । सब देवताओ के सामने मुझे अपने पास आधे आसन पर बिठाकर—

वक्ष के हरिचन्दन से अकित
मन्दार की माला
उन्होने गले से उतारी,
यह देखकर
कि जयन्त के मन मे
उसे पहनने की आकाक्षा है,
वे हल्के से
उसकी ओर देखकर मुसकराये,
फिर उन्होने हाथ बढाया,
और सहसा वह माला
मेरे गले मे पहना दी।

मातलि :

क्या ऐसा भी कुछ है जो आप अमरपति से पाने के अधिकारी नही ?
अपने सुखो मे लीन
इन्द्र के
स्वर्गराज्य को,
दानवो का उन्मूलन करके,
केवल दो ने ही निष्कण्टक बनाया है,
पहले
आगे से झुके
नरसिह के नखो ने,
और आज
तिरछे फलके के
आपके बाणो ने।

दुष्यन्त :

इसका श्रेय स्वय देवपति को ही है। क्योकि—
स्वामी का ही प्रभाव है यह

जो अधीनस्थ व्यक्ति
बडे-से-बडा कार्य भी
सम्पन्न कर लेता है।
अरुण
क्या कभी अन्धकार का नाश कर सकता,
यदि सूर्य ने
अपने रथ पर
उसे आगे न बिठाया होता ?

मातलि :

आपको ऐसा ही कहना शोभा देता है। (कुछ और आगे निकल आने पर) देखिए, स्वर्गभूमि पर आपका यश किस आदर के साथ प्रतिष्ठित है।

सुर-सुन्दरियो की
शृगार योजना से बचे
अगराग से
देवगण
कल्पलता के पत्रो पर
आपकी चरित्र-गाथा
गेय पदो के रूप मे
कल्पित और अकित कर रहे है।

दुष्यन्त

मातलि, उस दिन मन मे असुरो के महार की उत्कण्ठा थी, इसलिए ऊपर आते हुए इस प्रदेश को मै ठीक से देख नही पाया था। बता सकते हो यह कौन-सा मारुत-प्रदेश है जिसमे से होकर अब हम जा रहे है ?

मातलि

प्रवह मारुत का प्रदेश है यह

जो आकाश-गगा का आधार-स्थल है,
और जो अपने आवर्त मे
तारामण्डल का
रश्मि विभाजन करता हुआ
उसका सुन्चालन करता है ।
यह वही धूलिहीन प्रदेश है
जो वामन विष्णु के
दूसरे चरण का स्पर्श पाकर
पवित्र हो चुका है !

दुष्यन्त :

तो इसीलिए यहाँ आकर मेरी अन्तरात्मा अन्दर और बाहर से पुलकित हो उठी है ! (रथ के पहिये की ओर देखकर) लगता है हम लोग अब बादलो के मार्ग पर आ पहुँचे है ।

मातलि

यह आपने कैसे जान लिया ?

दुष्यन्त

तुम्हारे रथ के पहियो से,
जो जल-भार से लदे
बादलो पर आकर
बूँदो से भीग गये है,
इन चातको से
जो पर्वत-कन्दराओ से
उड-उडकर इस ओर आ रहे है,
और इन घोडो से
जिन्हे विद्युन के आलोक ने
अपने रग मे रँग दिया है ।

मातलि

आपका अनुमान ठीक है। अब क्षणभर मे ही आप अपनी राज्य-भूमि मे पहुँच जाएँगे।

दुष्यन्त : (नीचे देखकर)

मातलि, इस तरह वेग से उतरते हुए नीचे मनुष्यलोक को देखना कितना विचित्र लग रहा है!

ऊपर को उठे
पर्वत-शृगो से
समतल जैसे नीचे उतर रहे है,
और टहनियाँ अलग-अलग दिखायी देने से
पेड
जैसे पत्तो के झुरमुटो से बाहर आ रहे है।
सँकरे भागो मे
जल-रेखा स्पष्ट न होने से
नदियाँ टूटी-टूटी-सी थी,
पर अब वे
एक सूत्र मे जुडती जा रही है,
और समूची धरती
इस तरह मेरी ओर आ रही है
जैसे किसी ने इसे
ऊपर को उछाल दिया हो।

मातलि

हाँ, जैसा आप कह रहे है, ठीक वैसा ही लग रहा है। (आदर-भाव से देखकर) सच, धरती कितनी सुन्दर है!

दुष्यन्त :

पूर्व और पश्चिम समुद्र के बीच यह पर्वत कौन-सा है मातलि, जिससे जैसे स्वर्णिम आभा के झरने फूट रहे है, और जो देखने मे

सन्ध्याकालीन मेघ जैसा लगता है ?

मातलि :

यह किन्नरो का आवास हेमकूट पर्वत है जो तपस्वियो का परम धाम भी है।

देवो और असुरो के पिता
प्रजापति कश्यप
जो ब्रह्मापुत्र मरीचि की सन्तान है,
इसी पर्वत पर
अपनी पत्नी अदिति के साथ
तपश्चर्या करते है।

दुष्यन्त · (आदर-भाव के साथ)

तो ऐसे पुण्य स्थान को यूँही लाँघ जाना उचित नही। मै यहाँ रुक-कर और प्रजापति की प्रदक्षिणा करके ही आगे जाना चाहूँगा।

मातलि :

बहुत अच्छा विचार है यह। (उतरने का अभिनय करता हुआ) यह लीजिए, हम उतर आये !

दुष्यन्त (आश्चर्य के साथ)

मातलि,

यहाँ उतरकर भी
उतरने का आभास नही हुआ,
क्योकि
न तो धूल उड रही है,
न रथ के पहिये शब्द कर रहे है,
और न ही
धरती पर आ जाने से
हिचकोले खाने का अनुभव हो रहा है।

मातलि

आपके और इन्द्र के रथ मे बस इतना ही तो अन्तर है।

दुष्यन्त :

महर्षि मारीच का आश्रम किस स्थान पर है ?

मातलि : (हाथ से सकेत करके)

वह देखिए वहाँ—

जहाँ वे महर्षि
प्राची की ओर मुँह किये
शकर की तरह अविचल,
अपनी समाधि मे लीन है।
उनका आधा शरीर
वल्मीक से ढँका है,
और दूसरे यज्ञोपवीत की तरह
साँप की केचुल
उनके कन्धे पर पडी है।
कण्ठ से लिपटे
रूखी लताओ के गुभल
उन्हे अत्यधिक पीडित किये है,
और कन्धो तक फैली
उनकी जटाओ मे
कई-कई शकुन्त पक्षियो ने
अपने नीड बना लिये है।

दुष्यन्त : (देखकर)

इस तरह कष्ट उठाकर तपस्या करते मुनि को मै नमस्कार करता हूँ।

मातलि (रास खीचकर रथ रोकता हुआ)

अब हम प्रजापति के आश्रम मे आ गये है जहाँ के मन्दार वृक्षो को

स्वय अदिति ने अपने हाथो से सीचकर बडा किया है।

दुष्यन्त :

ओह ! यह स्थान तो स्वर्ग से भी अधिक शान्तिप्रद है। लगता है जैसे अमृत के सरोवर मे डुबकी लगा ली हो।

मातलि (रथ रोककर)

अब यहाँ उतर जाइए।

दुष्यन्त (उतरकर)

तो तुम क्या तब तक . ?

मातलि :

यह रथ सकेत के अनुसार रुका रह सकता है। मैं भी आपके साथ उतर रहा हूँ। (उतरकर) आइए, इधर से आइए। देखिए, ये है ऋषियो की तपोभूमियाँ।

दुष्यन्त

यहाँ की इस विपरीतता को देखकर सचमुच आश्चर्य होता है—

कल्पवृक्ष का वन,
परन्तु उसमे रहकर भी
केवल वायु से प्राण-धारण,
सुनहले कमलो के पराग से पीला जल
परन्तु उसमे केवल पुण्य स्नान,
मणि-शिलाओ के आवास,
परन्तु उनका उपयोग केवल समाधि के लिए,
और अप्सराओ की इतनी निकटता
परन्तु फिर भी इनका सयम,—
कितना अद्भुत है
कि दूसरे लोग
जो कुछ पाने के लिए तपस्या करते है,
ये

उस सब मे घिरे रहकर
यहाँ तपस्या कर रहे है !

मातलि :

मनस्वियो की प्राप्ति-कामना निरन्तर ऊँचे स्तरो की ओर उठती जाती है। (घूमकर, आकाश की ओर) क्यो वृद्ध साकल्य, भगवान् मारीच इस समय किस कार्य मे व्यस्त है ? (सुनकर) क्या कहा ? अदिति ने पातिव्रत धर्म के सम्बन्ध मे कुछ पूछा था और वे उनके तथा अन्य ऋषि-पत्नियो के सम्मुख उस विषय की व्याख्या कर रहे है ? तब तो उनसे मिलने के लिए प्रतीक्षा करनी होगी। (दुष्यन्त की ओर देखकर) तो आप तब तक यहाँ अशोक वृक्ष की छाया मे बैठे। मै जाकर महर्षि को आपके आने की सूचना देता हूँ।

दुष्यन्त :

जैसा तुम ठीक समझो।

बैठ जाता है। मातलि चला जाता है।

दुष्यन्त (शुभ शगुन का निरूपण करके)

क्यो व्यर्थ फडकती है, बाँह ?—
अब कोई आशा नही
कि मेरी मनोकामना कभी पूरी होगी।
एक बार श्रेय का अनादर
उसे केवल
दु ख के रूप मे ही लौटाकर लाता है।

नेपथ्य से

कह रही हूँ, इतनी चचलता मत कर। चाहे जो भी सामने आ जाय, उसी को अपना स्वभाव दिखाने लगता है !

दुष्यन्त : (उधर कान देकर)

यहाँ तो कोई धृष्टता कर ही नही सकता, फिर यह कौन है जिसे

इस तरहरोका जा रहा है ? (शब्द की दिशा मे देखकर आश्चर्य के साथ) अरे, यह कौन बालक है जिसे दो तापसियाँ पकडकर रोकना चाह रही है ? शक्ति मे साधारण बालको से कितना अलग है यह !

मॉ का दूध पीते
सिह-शिशु को
बीच मे ही यह
सिर के रोयो से मसलकर,
साथ खेलने के लिए
अपनी ओर
हाथ से खीच लेना चाहता है !

उपर्युक्त स्थिति मे दो तपस्वियों के साथ बालक का प्रवेश ।

बालक

जम्हाई ले, शावक ! कह रहा हूँ जम्हाई ले, मुझे तेरे दॉत गिनने है।

पहली तापसी

ढीठ, क्यो उसे तग करता है ? सभी जीवो के बच्चे हमारे अपने बच्चे जैसे ही है। तेरा तो उत्पात दिन-प्रतिदिन बढता ही जाता है ! ऋषियो ने ठीक ही तेरा नाम सर्वदमन रखा है !

दुष्यन्त :

इस बच्चे को देखकर मन मे ऐसे स्नेह उमड रहा है जैसे यह मेरा अपना ही बेटा हो ! (सोचता हुआ) सन्तानहीन हूँ, शायद इसीलिए मन मे इस तरह वात्सल्य का सचार हो रहा है।

दूसरी तापसी ·

तू इस शावक को छोडेगा नही, तो इसकी मॉ अभी तुझे दबोच लेगी।

सर्वदमन (मुसकराकर)

ओ हो-हो ! बहुत डर लग रहा है तुम्हारी बात सुनकर।

दुष्यन्त (आश्चर्य के साथ)

बीज है यह बालक
आनेवाले कल का
महान् तेजस्विता का !
सुलगता अगारा है यह
जिसे केवल
सूखे काठ की प्रतीक्षा है !

पहली तापसी

देख बच्चे, इस सिह-शावक को तू छोड दे। मै तुझे खेलने के लिए कुछ और देती हूँ।

सर्वदमन

कहाँ है कुछ और ? लाओ, दो।

हाथ फैला देता है।

दुष्यन्त (उसका हाथ देखकर)

अरे ! इसके हाथ पर तो चक्रवर्त्ती के लक्षण है !
नयी वस्तु पाने के प्रलोभन से
फैले इस हाथ की उँगलियाँ
एक जाल की तरह गुँथी है,
और लाल हथेली पर
एक अधखिला कमल है
जिसकी पत्तियाँ
जैसे उषा के आलोक मे
अब खुलना ही चाहती है।

दूसरी तापसी

इसे छोड दे, सुव्रता ! केवल बातो से इसे नही भुलाया जा सकता।

जा मेरी कुटिया से ऋषिकुमार सकोचन का खिलौना ले आ—वह रग-बिरगा मिट्टी का मोर।

सुव्रता

हाँ, यही करती हूँ।

चली जाती है।

सर्वदमन

तब तक मै इसी से खेलूँगा।

दूसरी तापसी (देखकर हँसती हुई)

अरे, अब तो इसे छोड दे!

दुष्यन्त

मन होता है इस नटखट को उठाकर प्यार करने लगूँ। (उसाँस भरकर)

कितने भाग्यवान् है वे लोग
जिनकी गोद मे आने के लिए
तुतलाते बच्चे,
नन्हे-नन्हे दाँत निकालकर,
अनायास किलकारियाँ भरते है,
और अपने अगो की धूल से
उनके शरीर गँदला देते है!

दूसरी तापसी (उँगली से धमकाती हुई)

अच्छा तो तू मेरी बात नही सुनता न? (इधर-उधर देखकर) यहाँ कोई ऋषिकुमार नही है? (दुष्यन्त को देखकर) भद्र, आप इधर आयेगे? यह बच्चा इस सिह-शावक को सता रहा है। ऐसे कस-कर उसे पकडे है कि छोडता ही नहीं। आप आकर उसे छुडा दीजिए।

दुष्यन्त

मैं आ रहा हूँ। (पास आकर मुसकराता हुआ) महर्षि-पुत्र!

इस आश्रम के
अनुकूल आचरण नही है यह
जिससे तुम
अपने सयमी पिता के
आन्तरिक गुणो को
दूषित कर रहे हो।
यह उसी तरह है
जैसे चन्दन की सुगन्ध को
काले साँप का बच्चा
अपने विष मे दूपित कर दे।

दूसरी तापसी

यह ऋषिकुमार नही है, भद्र !

दुष्यन्त :

इसका पता इसके आचार और आकार के अनुरूप इसकी चेष्टाओ से ही चल रहा है। मैने केवल इस स्थान को दृष्टि मे रखते हुए ऐसा सोचा था। (सिहशावक को बच्चे के हाथ से छुडाकर उसमे स्पर्श-सुख का अनुभव करता हुआ, स्वगत)

जाने कौन है वह
जिसके कुल की यह कोपल है ?
फिर भी इसे छूकर
अगो मे
मुझे इतने सुख का अनुभव हो रहा है !
सोचता हूँ,
उसके हृदय को
इस स्पर्श से कितनी शान्ति मिलती होगी
जिस भाग्यवान् की
यह अपनी सन्तान है !

दूसरी तापसी :

सच, कितने आश्चर्य की बात है !

दुष्यन्त

आश्चर्य की बात ? आश्चर्य की बात क्या है, आर्ये ?

दूसरी तापसी :

इस बच्चे से आपका कोई सम्बन्ध नही, फिर भी आपसे इसकी आकृति इतनी मिलती है, इसी पर मुझे आश्चर्य हो रहा है। फिर यह तो कभी किसी की मानता ही नही, पर आपसे परिचय न होते हुए भी आपकी बात इसने झट से मान ली।

दुष्यन्त (बच्चे को दुलारता हुआ)

आर्ये, यदि ऋषिकुमार नही, तो फिर किस वश से है यह ?

दूसरी तापसी

पुरुवश से।

दुष्यन्त (स्वगत)

तो यह हमारे ही वश से है! शायद इसीलिए इस तपस्विनी को हम दोनो की आकृति मे समानता प्रतीत हो रही है। (प्रकट) पुरुवश से ? परन्तु तपोवन का जीवन तो पुरुवश के लोगो का अन्तिम व्रत होता है !

पृथ्वी की रक्षा के लिए
पहले उनका
सुधा से पुते
बडे-बडे भवनो मे
आवास होता है,
चौथे आश्रम मे प्रवेश करके ही
वे
यती-धर्म का पालन करने के लिए
इन वृक्षो की छाया को

अपना घर बनाते है।

फिर पैरो से चलकर मर्त्यलोक का कोई निवासी यहा पहुँच ही कैसे सक्ता है ?

दूसरी तापसी

आप ठीक कहते है। परन्तु इस बच्चे की मा का सम्बन्ध यहॉ की एक अप्सरा से है, इसलिए इसे उसने देवगुरु मारीच के इस आश्रम मे ही जन्म दिया है।

दुष्यन्त (स्वगत)

ओह ! यह तो एक और आशाजनक बात सुनने को मिली। (प्रकट) यह बताऍगी कि इसकी मॉ जिन रार्जाष की पत्नी है, उनका नाम क्या है ?

दूसरी तापसी .

ऐसे व्यक्ति का नाम कौन मुँह पर लाये जिसने अपनी धर्मपत्नी का परित्याग कर रखा हो ?

दुष्यन्त : (स्वगत)

यह सारा वृत्तान्त तो मेरी ही ओर सकेत करता है। अच्छा, बच्चे की मॉ के नाम से जानने का प्रयत्न करता हूँ। (सोचकर) परन्तु परायी स्त्री के सम्बन्ध मे पूछ-ताछ करना आर्य-धर्म नही।

सुव्रता मिट्टी का मोर लिये हुए आती है।

सुव्रता :

देख सर्वदमन, तेरे लिए यह तापसी सुन्दर शकुन्त लायी है।

सर्वदमन:

मॉ आयी है ? कहॉ है ?

दोनो तापसियॉ हँसती है।

सुव्रता :

मॉ का-सा नाम सुनकर कैसे इसका मन लुभा आया है !

दूसरी तापसी :

उसने कहा है कि वह तेरे लिए सुन्दर मोर लायी है। देख, है न यह सुन्दर ?

दुष्यन्त : (स्वगत)

तो क्या इसकी माँ का नाम शकुन्तला है ? पर नाम तो कइयो के एक-से होते है। फिर भी यह नाम लिये जाने से कितनी उदासी मन पर घिर आयी है !

सर्वदमन :

बहुत चचल होता है न मोर, अन्तिका ?. .इसीलिए मुझे यह अच्छा लगता है।

खिलौना हाथ में ले लेता है।

सुव्रता : (देखकर, व्यग्रतापूर्वक)

अरे, इसके रक्षावलय का क्या हुआ ? वह इसके मणिबन्ध पर दिखाई नही दे रहा।

दुष्यन्त

घबराएँ नही, आर्या ! सिह शावक के साथ खीच-तान करने मे वह इसके हाथ पर से गिर गया है।

वलय उठाने लगता है।

सुव्रता-अन्तिका

ना-ना-ना, इसे हाथ मत लगाइए ! (देखकर) अरे, आपने तो इसे उठा ही लिया।

वक्ष पर हाथ रखे आश्चर्य के साथ एक-दूसरी की ओर देखती है।

दुष्यन्त :

पर आप इसके लिए मना क्यो कर रही थी ?

सुव्रता

ऐसा है भद्र, कि यह वलय देवलोक की अत्यधिक प्रभावशाली

अपराजिता नाम की ओषधि से बना है। इस बच्चे के नाल-छेदन सस्कार के समय भगवान् मारीच ने स्वय यह इसके हाथ पर बाँधा था। यह यदि भूमि पर गिर पडे, तो इसे इस बच्चे और इसके माता-पिता को छोडकर और कोई नही उठा मकता।

दुष्यन्त

और यदि कोई उठा ले, तो ?

सुव्रता

तो यह साँप बनकर उसे डस लेता है।

दुष्यन्त

आप लोगो ने पहले कभी ऐसा होते देखा है ?

सुव्रता–अन्तिका

कितनी ही बार देखा है।

दुष्यन्त (हर्ष के साथ, स्वगत)

ऐसा है, तब तो सचमुच मेरी मनोकामना पूरी हो गयी और मै अब भी इसका अभिनन्दन नही कर रहा !

बच्चे को गले से लगा लेता है।

अन्तिका

चल सुव्रता, चलकर यह बात शकुन्तला को वता दे जो इम समय अपने नियम-पालन मे लगी है।

दोनो चली जाती है।

सर्वदमन

छोडो मुझे ! छोडो भी न, मै अपनी माँ के पास जाऊँगा।

दुष्यन्त

बेटे, अब तू मेरे साथ चलकर ही माँ का अभिनन्दन करना।

सर्वदमन

तुम मेरे पिता नही हो, मेरे पिता दुष्यन्त है।

दुष्यन्त

हाँ, इस तरह विरोध करके ही तो तुम मेरी बात का समर्थन कर रहे हो !

शकुन्तला आती है। वह केवल एक चोटी किये है।

शकुन्तला (जैसे असमंजस मे)

सर्वदमन के हाथ मे गिरा ओषधि-वलय किसी के उठाने पर भी ज्यो-का-त्यो बना रहा, यह सुनकर भी अपने भाग्य पर विश्वास नही होता। पर मिश्रकेशी की बात यदि सच हो, तो ऐसा हो भी सकता है।

घूमती है।

दुष्यन्त (शकुन्तला को देखकर हर्ष और खेद के साथ)

अरे ! यह क्या वही शकुन्तला है ?

दो मैले वस्त्र,
कुम्हलाये मुख पर
व्रत-पालन की छाया,
और एक ही उदास-सी वेणी !
कितने समय से
यह विरहिणी
मुझ निष्ठुर के लिए
वियोग-साधना करती हुई,
अपने उज्ज्वल चरित्र से
व्यथा-भार सह रही है !

शकुन्तला : (दुष्यन्त की पश्चात्ताप से मलिन आकृति देखकर, असमंजस मे)

नही, ये आर्यपुत्र नही है। तो फिर कौन है यह जो मेरे बच्चे के रक्षामंगल की अवहेलना करके उसे अपने अंग-स्पर्श से दूषित कर रहा है ?

सर्वदमन : (माँ के पास जाकर)

माँ, यह कौन है जो 'बेटा' कहकर ऐसे स्नेह से मेरा आलिगन कर रहा है ?

दुष्यन्त :

मैने तुमसे निर्दय व्यवहार किया था, शकुन्तला ! पर उसका परिणाम वैसा प्रतिकूल नही रहा। चाहूँगा कि तुम अब मुझे पहचानने मे किसी बाधा का अनुभव न करो।

शकुन्तला : (स्वगत)

आश्वस्त हो, हृदय ! सचमुच दैव ने कृपा की है वैसा आघात कर चुकने के बाद अब उसे मुझसे द्वेष नही रहा। ये आर्यपुत्र ही है।

दुष्यन्त :

शकुन्तला !

सौभाग्य है
कि स्मृति की किरण ने.
मोह का अन्धकार नष्ट कर दिया,
और फिर से मै आज
तुम्हे अपने सामने देख रहा हूँ।
चन्द्रमा से ग्रहण हट गया,
और स्वाभाविक है
कि अब उसका
फिर से रोहिणी से योग हो।

शकुन्तला : (हर्षपूर्वक)

आप सदा विजयी हो, आर्यपुत्र !

दुष्यन्त :

शकुन्तला !

आँसुओ से रुँधे कण्ठ से

मेरे विजयी होने की बात
तुम स्पष्ट नही कह सकी,
फिर भी मै विजयी हूँ
क्योकि
ये शब्द कहने के लिए हिलते
तुम्हारे होठ,
जो बिना किसी प्रसाधन के भी लाल है,
आज अपने सामने देख रहा हूँ।

सर्वदमन

यह कौन है, माँ ?

शकुन्तला :

मुझसे नही, अपने भाग्य से पूछ, बेटे !

दुष्यन्त

कोमलागि,
मेरे किये तिरस्कार की पीडा
अब अपने मन से निकाल दो,
जाने क्या था
जिससे वह घना अँधेरा
मेरी स्मृति पर घिर आया था।
अँधेरे मे जीते व्यक्ति
अपने शुभ को नही पहचानते,
अन्धा कैसे जान सकता है
कि जिसे साँप समझकर उसने सिर से परे फेक दिया,
वह वास्तव मे
किसी की पहनायी
सुन्दर-सी फूलमाला थी ?

शकुन्तला के पैरों पर गिर जाता है।

शकुन्तला :

उठ जाएँ, आर्यपुत्र ! मेरा ही कोई पहले जन्म का पाप था जो अपने परिणाम तक पहुँचकर उन दिनो मेरे सुख मे बाधक बन गया था। अन्यथा इतने कोमल-हृदय आप मेरे प्रति उस तरह रूखे कैसे हो सकते थे ?

दुष्यन्त उठ जाता है।

परन्तु आर्यपुत्र को अब इस अभागी की याद कैसे हो आयी ?

दुष्यन्त :

मन मे दु ख की साल निकल जाने दो, फिर बताता हूँ।

मोहवश,
तुम्हारे होठो पर गिरते
जिन आँसुओ की
तब मैने उपेक्षा कर दी थी,
आज,
इन तिरछी पलको मे अटके
उन आँसुओ को,
एक बार पोछकर
मुझे मन का पश्चात्ताप
कुछ मिटा लेने दो।

उसके आँसू पोछने लगता है।

शकुन्तला (आँसू पोछ दिये जाने पर, दुष्यन्त की उँगली मे पडी अँगूठी देखकर)

आर्यपुत्र, यह वही अँगूठी है न ?

दुष्यन्त

हाँ, वही अँगूठी है। यही जब विचित्र ढग मे फिर मेरे हाथ लगी, तो मेरी खोयी हुई स्मृति लौट आयी।

शकुन्तला

तब कितना बुरा किया था इसने .मैने इसमे आपको विश्वास दिलाना चाहा था, और यह जाने कहाँ अदृश्य हो गयी थी।

दुष्यन्त

वसन्त लौट आया, इस उपलक्ष मे लता इस फूल को अब फिर से धारण कर ले।

शकुन्तला

नही, अब आप ही इसे पहने रहे। मुझे इस पर भरोसा नही।

मातलि आता है।

मातलि

पत्नी से पुन मिलने और पुत्र का मुख देखने के इस अवसर पर मेरी ओर से बधाई।

दुष्यन्त

मनोकामना एक मित्र के सहयोग से पूरी हुई, इसलिए यह और भी श्रेयस्कर है। पर, मातलि ! क्या देवपति इस विषय मे नही जानते थे ?

मातलि (मुसकराकर)

वे प्रभु है प्रभु क्या नही जानते ? आइए, भगवान् मारीच आपसे साक्षात्कार करना चाहते है।

दुष्यन्त

पुत्र को उठा लो, शकुन्तला ! मै तुम्हे आगे करके ही महर्षि के दर्शन करना चाहता हूँ।

शकुन्तला

आर्यपुत्र के साथ गुरु के सामने जाते मुझे सकोच हो रहा है।

दुष्यन्त

सब घूमते है । अदिति के साथ आसन पर बैठे महर्षि मारीच का प्रवेश ।

मारीच (दुष्यन्त को आते देखकर)

अदिति !

यह है
भूलोक का स्वामी दुष्यन्त,
जो असुरो के साथ युद्ध मे
तुम्हारे पुत्र इन्द्र के
आगे-आगे रहता है ।
इसके धनुष मे यह प्रभाव है
कि इन्द्र का तीखा वज्र,
अब उपयोग मे न आने से
केवल उसके हाथ का
आभूषण-मात्र रह गया है !

अदिति

इसकी आकृति ही इसके प्रभाव का परिचय दे रही है ।

मातलि

आयुष्मन्, ये रहे देवताओ के माता-पिता जिनकी आँखो मे आपको देखकर पुत्र-प्रेम की-सी भावना उमड रही है । आइए, इनके पास चलिए ।

दुष्यन्त

मातलि !

यही दम्पति है वे
जो ब्रह्मा से केवल एक पीढी आगे,
दक्ष और मरीचि की सन्तान है,
और जिन्हे मुनिगण

बारह कलाओ मे विभाजित
तेजोमय सूर्य के
स्रष्टा बताते है ?
यही है वे
जिनसे ;
यज्ञ-भाग के अधिकारी,
तीनो भुवनो के नायक
इन्द्र का जन्म हुआ है,
और
वामन अवतार के लिए
स्वयभू ब्रह्मा से भी महान्
परम पुरुष विष्णु ने
जिन्हे अपने माता-पिता के रूप मे चुना है ?

मातलि

हा, यही है वे !

दुष्यन्त (प्रणाम करके)

इन्द्र का आदेशवर्ती दुष्यन्त आप दोनो को प्रणाम करता है।

मारीच

चिरकाल तक जियो, वत्स, और पृथ्वी की पालना करो।

अदिति

कभी कोई भी शत्रु तुम्हे न जीत सके।

शकुन्तला पुत्र-सहित उन दोनो के पैर छूती है।

मारीच

बेटी !

इन्द्र-सा पति
और जयन्त-सा पुत्र

तुझे मिला है,
और क्या आशीर्वाद दूं तुझे—
केवल यही कहता हूँ
कि तेरा सौभाग्य भी
इन्द्राणी-सा अचल हो।

अदिति

पति से तुझे बहुत मान मिले, बेटी! तेरा यह चिरजीव पुत्र माता और पिता दोनो के कुल की शोभा बढाये। आओ, बैठो सब लोग।

सब महर्षि के आस-पास बैठ जाते है।

मारीच (एक-एक करके तीनो की ओर सकेत करते हुए)

शकुन्तला-सी साध्वी पत्नी,
इस बालक-सी अच्छी सन्तान,
और अपने-से तुम स्वय—
निश्चय ही यह मिलन
श्रद्धा, धन और शास्त्र
तीनो के सगम की तरह है।

दुष्यन्त

भगवन्, मेरी मनोकामना पहले पूरी हुई, आपके दर्शन मुझे बाद मे हुए। आपकी कृपा का यह रूप सचमुच अद्भुत है।

पहले फूल उगता है
फिर फल आता है,
पहले बादल घिरता है,
फिर पानी बरसता है,
जीवन मे
कार्य-कारण का
यह एक निश्चित-सा क्रम है।

परन्तु
आपकी कृपा-दृष्टि की बात
इससे अलग है,
क्योंकि
उसका अधिकारी होने से पहले ही
याचक को
मनचाही सम्पदा
प्राप्त हो जाती है।

मातलि

आयुष्मन्, विश्वगुरु यदि कृपा करे तो इसी रूप मे करते है।

दुष्यन्त

भगवन्, आपके सगोत्र महर्षि कण्व के प्रति मुझसे अपराध हुआ है। मैने गान्धर्व विधि से शकुन्तला से विवाह किया था। परन्तु कुछ समय बाद जब इसके बन्धु इसे लेकर मेरे पास आये, तो मैने इसे अस्वीकार कर दिया क्योंकि वह बात मेरी स्मृति से उतर ही गयी थी। बाद मे यह अँगूठी देखते ही मुझे सहसा स्मरण हो आया कि मैने इससे विवाह किया था। अब यह सोचता हूँ, तो मुझे बहुत विचित्र-सा लगता है।

मेरा मानसिक विकार
कुछ ऐसा था
जैसे
एक हाथी को
पास से निकलते देखकर भी
कोई व्यक्ति
उसके अस्तित्व मे सन्देह करे।
परन्तु
उसके चले जाने पर

सहसा
पद-चिह्नों को देखकर
उसे उसके होने मे
विश्वास हो जाय ।

मारीच

देखो वत्स, इसे अपना अपराध मानकर दुःखी होने की आवश्यकता नही । तुम्हारे इसे भूल जाने का भी एक कारण था जो मै तुम्हे बता रहा हूँ ।

दुष्यन्त ·

मै सुनने के लिए उत्सुक हूँ ।

मारीच :

तुमने जब शकुन्तला का तिरस्कार किया, तो मेनका इसे उस व्याकुल मन स्थिति मे अप्सरा-तीर्थ के घाट से उठाकर यहाँ अदिति के पास ले आयी थी । तभी मैने समाधि-स्थित होकर जान लिया था कि यह दुर्वासा के शाप का प्रभाव है जो तुमने इसे सहधर्मिणी बनाने के बाद भी इस बेचारी का परित्याग कर दिया है ।

दुष्यन्त (उसाँस भरकर, स्वगत)

ओह ! इससे तो मुझ पर कोई आक्षेप नही रह जाता।

शकुन्तला (स्वगत)

सौभाग्य है कि आर्य पुत्र अकारण ही मेरा परित्याग करने के दोषी नही है। परन्तु याद नही आता कि कब उस ऋषि ने मुझे शाप दिया था। सम्भव है खोये मन से पडी रहने के कारण वह शाप मैने न सुना हो। तभी तो न अनसूया और प्रियवदा ने चलते समय धीरे से मुझसे कहा था कि राजा यदि किसी कारणवश मुझे न पहचान पाएँ, तो मै उन्हे उनकी अँगूठी दिखा दूँ।

मारीच (शकुन्तला की ओर देखकर)

बेटी, तुम्हे भी अब वास्तविकता का पता चल गया है। इसलिए

सर्वदमन का हाथ अपने हाथ में ले लेता है ।

मारीच

आगे चलकर यह बालक चक्रवर्ती सम्राट् होगा ।

स्थिर और सयत गति के रथ पर
समुद्र के पार तक जाकर
यह अजेय वीर
सात द्वीपो की परिधि तक
पूरी पृथ्वी पर
अपनी विजय-पताका फहराएगा ।
यहाँ
सभी जीवो का दमन करने के कारण
इसका नाम
सर्वदमन रखा गया था,
परन्तु आगे चलकर,
विश्व का भरण करने मे
इसकी ख्याति
भरत के नाम से होगी ।

दुष्यन्त

इसके सब सस्कार आपके हाथो सम्पन्न हुए है, इसलिए इससे कुछ भी आशा की जा सकती है ।

अदिति

मै समझती हूँ कि ऋषि कण्व को इसकी सूचना भेज देनी चाहिए कि उनकी बेटी की मनोकामना आज पूरी हो गई है । इसकी वात्सल्यमयी माँ मेनका को तो वैसे ही पता चल जाएगा क्योकि वह तो यही मेरी सेवा मे है ।

शकुन्तला (स्वगत)

देवी ने स्वय ही मेरे मन की बात कह दी ।

मारीच

यूँ तो अपनी तपस्या के प्रभाव से महर्षि कण्व यह सब जान गयें होगे

दुष्यन्त

और इससे सोचता हूँ कि उनके मन मे मेरे प्रति अधिक रोष भी नही होगा ।

मारीच

. फिर भी हमे अपनी ओर से उनके पास समाचार भेजना ही चाहिए कि उनकी पुत्री को पति ने आज पुत्र-सहित विधिवत् स्वीकार कर लिया है । यहाँ कोई है ?

शिष्य (आकर)

मै उपस्थित हूँ, भगवन् !

मारीच

गालव, तुम अभी आकाशमार्ग से चले जाओ और जाकर मेरी ओर से महर्षि कण्व को यह प्रिय समाचार दे दो कि शाप का प्रभाव और उससे उत्पन्न स्मृति-दोष हट जाने से आज दुष्यन्त ने शकुन्तला और उसके पुत्र को यथाविधि स्वीकार कर लिया है ।

गालव

जैसी गुरु की आज्ञा ।

चला जाता है ।

मारीच (दुष्यन्त से)

वत्स, अब तुम भी पुत्र और पत्नी के साथ अपने मित्र इन्द्र के रथ मे बैठकर राजधानी की ओर प्रस्थान करो ।

दुष्यन्त (प्रणाम करके)

जैसी देव की आज्ञा !

मारीच

अब—

दोनो सदा विजयी रहो,
तुम और इन्द्र,
तथा
शत-शत युगो तक
एक-दूसरे के सहायक बनकर
स्वर्ग और मर्त्य लोक के कल्याण के लिए
श्रेयस्कर कार्य करते रहो,
इन्द्र तुम्हारे राज्य में
बहुत-बहुत वर्षा करे,
और तुम
बहुत-बहुत यज्ञ करके
उसे पर्याप्त सन्तोष देते रहो।

दुष्यन्त

भगवन्, दोनो लोको के श्रेयस् के लिए मै यथाशक्ति प्रयत्न करता रहूँगा।

मारीच

बताओ, अब मै तुम्हारे और क्या हितकार्य कर सकता हूँ?

दुष्यन्त

इससे बढकर और भी कुछ हितकार्य हो सकता है क्या? फिर भी इतनी कामना है कि—

भरत वाक्य

जो भी राजा हो,
वह सदा प्रजा हित मे लगा रहे,
और लोक मे
महिमामय वेदवाणी का

कभी क्षय न हो,
इसके अतिरिक्त,
नील-लोहित वर्ण
तथा सर्वशक्ति-सम्पन्न,
स्वयंभू शिव
पुनर्जन्म की यातना से
मुझे मुक्त करें।

सब चले जाते हैं।

॥ सातवाँ अंक ॥